अग्निशिखा जुलाई २०१६ **वर्ष ४६, अंक १२, पूर्णांक ५५१**

विषय-सूची

श्रद्धा का प्रस्फुटन

(श्रीमां के वचन)

सन्देश/सम्पादकीय	३
ज्ञान के रूप में श्रद्धा	५
शक्ति के रूप में श्रद्धा	११
श्रद्धा का पुल बांधना	२३
श्रद्धा पर चिन्तन-मनन	३८
श्रीमां द्वारा सुनायी गयी कहानी : छेदवाला सिक्का	४२

'पुरोधा'

दैनन्दिनी		४४
आदमी	प्रो. रमेश तिवारी 'विराम'	४८
जोहान्स होलेन्बर्ग	वन्दना	४९
'ऐनुअल जनरल मीटिंग' की सूचना		५८

अग्निशिखा का वार्षिक शुल्क :
एक वर्ष—१८०रु.; तीन वर्ष—५२०रु.; पांच वर्ष—८६०रु.।
पत्रिका हर महीने की ४ तारीख को प्रेषित की जाती है।

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका
Website : www.aurosociety.org

सम्पादिका : वन्दना
प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी—६०५००२
मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी

सन्देश

भागवत कृपा हमारे साथ है और हमें कभी नहीं छोड़ती—तब भी नहीं जब सब कुछ अन्धकारमय प्रतीत होता है।

—श्रीमां

सम्पादकीय टिप्पणी : "सबसे अधिक घने अन्धकार के दिनों में श्रद्धा ही सबसे अधिक अचूक पथ-प्रदर्शक है।" यह ऐसा गुप्त ज्ञान है जो हमारी अन्तरात्मा से ऐसे प्रकाश के रूप में अनायास उभर आता है जो लक्ष्य की ओर संकेत करता है; यह ऐसा दिक्सूचक यन्त्र है जो तब भी हमें रास्ते पर बनाये रखता है जब हमारी सत्ता के अन्य भाग हमें भटकाने में लगे रहते हैं। श्रद्धा एक ऐसी शक्ति है जो तब भी हमारी सहायता करती है, हमारी रक्षा करती है जब दूसरी शक्तियों पर ग्रहण लग जाता है। हमसे सब कुछ छीन लिये जाने पर भी श्रद्धा हमारे जीवन को दोबारा गढ़ सकती है। यह 'भागवत कृपा' की देन है, हमें दिया हुआ ऐसा धन है जिसे हमें बड़े यत्न से संजो कर रखना चाहिये। श्रद्धा के बिना मनुष्य आगे नहीं बढ़ सकता, चाहे वह सामान्य जीवन जी रहा हो जहां उसे स्वयं को जीवित रखने के लिए अपनी अन्तर्जात श्रद्धा पर भरोसा रखना होता है या यौगिक जीवन, जहां उसे पग-पग पर हमेशा नयी और अपरिचित चीजों का सामना करना होता है। श्रीअरविन्द तथा श्रीमां दोनों ही ने योग की इस बुनियादी आधार-शिला पर बहुत अधिक जोर दिया है। इससे पहले, जून २०१६ के अंक में हमने श्रद्धा पर श्रीअरविन्द के वचन दिये थे। इस अंक में हम श्रद्धा पर श्रीमां के वचनों का ऐसा संकलन प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे हैं जो हमारे दैनन्दिन जीवन में पग-पग पर हमारा पथ-प्रदर्शन कर हमें सच्चे जीवन की ओर अग्रसर करेगा।

जिस समय हर चीज बुरी से अधिक बुरी अवस्था की ओर जाती हुई प्रतीत होती है, ठीक उसी समय हमें अपनी महती श्रद्धा का परिचय देना चाहिये और यह जानना चाहिये कि भगवत्कृपा कभी हमारा साथ नहीं छोड़ेगी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. १८६

ज्ञान के रूप में श्रद्धा

श्रद्धा अन्तरात्मा का सहज ज्ञान है

बाहरी चेतना का प्रत्यक्ष दर्शन चैत्य पुरुष के दर्शन का खण्डन कर सकता है, लेकिन चैत्य पुरुष के पास सच्चा ज्ञान होता है—एक अन्तर्भासात्मक सहज ज्ञान। वह कहता है: "मैं जानता हूं; मैं कारण नहीं दे सकता; पर मैं जानता हूं।" क्योंकि उसका ज्ञान मानसिक नहीं होता, अनुभव पर आधारित या प्रमाणित सत्य नहीं होता। वह दलीलें दिये जाने के बाद भी नहीं मानता, श्रद्धा अन्तरात्मा की गति है जिसका ज्ञान सहज और सीधा होता है। सारी दुनिया भले विरोध करे या विपक्ष में हजारों प्रमाण दे, फिर भी वह आन्तरिक ज्ञान के द्वारा जानता है, उसे प्रत्यक्ष दर्शन होता है जो हर विरोध का सामना कर सकता है, उसे तादात्म्य के द्वारा दर्शन होता है। चैत्य पुरुष का ज्ञान निश्चित, वास्तविक और ठोस होता है। तुम उसे अपने मन, अपने प्राण और अपने शरीर में भी उतार सकते हो; और तब तुम्हारे अन्दर समग्र श्रद्धा होगी—ऐसी श्रद्धा जो सचमुच पहाड़ों को भी हिला सके। लेकिन तब सारी सत्ता में कोई भी चीज ऐसी न होनी चाहिये जो आकर कहे: "नहीं, यह ऐसा नहीं है", कोई चीज प्रमाण की मांग न करे। जरा-सा अर्ध विश्वास भी सारे मामले को बिगाड़ सकता है। अगर श्रद्धा पूर्ण और अचल न हो तो परम प्रभु कैसे अभिव्यक्त हो सकते हैं? श्रद्धा अपने-आपमें हमेशा अचल होती है—यह उसकी अपनी प्रकृति है, वरना वह श्रद्धा ही नहीं होती। लेकिन हो सकता है कि मन या प्राण या शरीर चैत्य गतिविधि का अनुसरण न करें। कोई आदमी एक योगी के पास आ सकता है और अचानक उसके अन्दर यह श्रद्धा हो सकती है कि यह व्यक्ति मुझे लक्ष्य तक पहुंचा सकेगा। वह नहीं जानता कि उसमें ज्ञान है या नहीं। उसे एक चैत्य धक्का-सा लगता है और वह जान लेता है कि उसे अपना गुरु मिल गया। वह लम्बे मानसिक ऊहापोह के बाद या कई सारे चमत्कार देख कर विश्वास नहीं करता। और यही वह श्रद्धा है जिसका मूल्य है। तुम अगर तर्क करना शुरू कर दो तो हमेशा अपनी नियति को खोते रहोगे।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १६४-६५

श्रद्धा गलत रास्ते पर नहीं ले जाती

लोग प्रायः उस चीज के कारण धोखे में नहीं आते जिसे अन्ध श्रद्धा कहा जाता है। वे प्रायः कहते हैं, "आह, मैंने इस आदमी पर या उस आदमी पर विश्वास किया, लेकिन उसने मुझे धोखा दे दिया!" लेकिन वास्तव में दोष उस आदमी का नहीं, विश्वास करने वाले का होता है। यह उसकी अपनी कमजोरी के कारण होता है। अगर वह अपनी श्रद्धा बनाये रखता तो उस आदमी को भी बदल देता। चूंकि वह अपनी उसी श्रद्धा-चेतना में न रह सका इसलिए उसे विश्वासघात का अनुभव हुआ और वह उस आदमी को वैसा न बना सका जैसा उसे बनाना चाहता था। अगर उसके अन्दर समग्र श्रद्धा होती तो वह उस आदमी को बदलने के लिए बाधित करता। हमेशा श्रद्धा के द्वारा ही चमत्कार हुआ करते हैं। एक आदमी किसी दूसरे के पास जाता है और वहां जाकर 'दिव्य उपस्थिति' के साथ नाता जोड़ता है; अगर वह इस नाते को शुद्ध और स्थिर बनाये रख सके तो वह 'दिव्य चेतना' को अत्यन्त भौतिक रूप में अभिव्यक्त होने के लिए बाधित करेगा। लेकिन सब कुछ तुम्हारी अपनी सच्चाई और तुम्हारे अपने मानक पर निर्भर करता है। तुम चैत्य रूप से जितने अधिक तैयार होओगे, उतने ही अधिक सच्चे स्रोत और सच्चे गुरु के पास ले जाये जाओगे। चैत्य और उसकी श्रद्धा हमेशा सच्चे होते हैं, लेकिन अगर तुम्हारी बाहरी सत्ता में कपट है, अगर तुम आध्यात्मिक जीवन नहीं, व्यक्तिगत शक्ति की खोज में हो तो तुम धोखे में आ सकते हो। तुम्हारी श्रद्धा नहीं, कपट तुम्हें धोखा देता है। श्रद्धा अपने-आपमें शुद्ध होती है लेकिन वह तुम्हारी सत्ता में निचली गतिविधियों से घुल-मिल सकती है, और तब तुम गलत रास्ते पर ले जाये जा सकते हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १६५-६६

हमें मन से परे श्रद्धा के क्षेत्र में जाना होगा

सुरक्षित रूप में कार्य करने के लिए व्यक्ति को मन के क्षेत्र से श्रद्धा के क्षेत्र में या फिर उच्चतर चेतना के क्षेत्र में जाना चाहिये। यह बहुत स्पष्ट है कि श्रद्धा शरीर पर क्रिया करने के लिए एक बहुत प्रभावशाली साधन है। वे लोग जो सरल-हृदय होते हैं, जिनमें विचारों की जटिलता

नहीं होती—सीधे-सादे लोग, हां—जिनका मानसिक विकास बहुत उच्च और जटिल नहीं होता पर जिनमें एक गहरी श्रद्धा होती है, जो अपने शरीर पर अत्यधिक काम कर सकते हैं, अत्यधिक। यही कारण है कि कभी-कभी लोग आश्चर्य करते हैं: "देखो, एक यह व्यक्ति है जो महान् उपलब्धि पा चुका है, असाधारण है, फिर भी छोटी-छोटी भौतिक वस्तुओं का दास है, जब कि वह दूसरा व्यक्ति, हे भगवान्! —जो बिलकुल साधारण, सीधा-सादा आदमी है, असंस्कृत-सा लगता है पर जिसमें बड़ी श्रद्धा है, कठिनाइयों और विघ्न-बाधाओं को ऐसे पार कर जाता है मानों एक विजेता हो!"

मैं यह नहीं कहती कि बहुत सुसंस्कृत व्यक्ति में श्रद्धा नहीं हो सकती, पर यह अधिक कठिन है। क्योंकि वहां सदा ही यह मानसिक तत्त्व विद्यमान रहता है जो प्रतिवाद करता, तर्क करता व समझने की कोशिश करता है, पर जिसे समझाना व विश्वास दिलाना कठिन है, वह प्रमाण चाहता है। उसकी श्रद्धा कम खरी होती है। उसके लिए इस सर्पिल विकास में एक अधिक ऊंची स्थिति को प्राप्त करना, मन से परे आध्यात्मिकता में जाना जरूरी है; तब वहां स्वभावतः श्रद्धा उच्च कोटि की होती है। परन्तु मेरा मतलब है कि साधारण दैनिक जीवन में एक बहुत सीधा-सादा मनुष्य, जिसमें बहुत ज्वलन्त श्रद्धा हो, अपने शरीर पर प्रभुत्व पा सकता है—यह सच्चा "प्रभुत्व" नहीं होता, यह केवल एक सहज-स्वाभाविक गति होती है—अपने शरीर पर उस व्यक्ति से कहीं अधिक नियन्त्रण रख सकता है जो विकास की बहुत ऊंची अवस्था को पहुंच चुका हो।

अपनी निश्चिति अपने अन्दर ही ढूंढ़ो

श्रीअरविन्द ने अक्सर कहा है कि उन्होंने जो कुछ कहा है या भविष्यवाणी की है उसकी सच्चाई का अकाट्य प्रमाण तब तक नहीं मिलेगा जब तक वह संसिद्ध नहीं हो जाती; जब सब कुछ चरितार्थ हो जायेगा तब जो लोग मानने से इन्कार करते हैं वे लोग अपनी गलती पहचानने को मजबूर हो जायेंगे—पर शायद वे तब तक जीवित ही न रहें! अतः करने को एक ही बात रह जाती है: विरोधों और नकारों की परवाह न करते हुए, अपनी श्रद्धा और अपने निश्चय पर दृढ़ रहते हुए अपनी राह चलते चलो। कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जिन्हें सुख-चैन और आराम से रहने के

लिए दूसरों के सहारे, विश्वास और निश्चिति की जरूरत होती है—ऐसे लोग सदा दुःखी रहते हैं, क्योंकि, निस्सन्देह, उन्हें ऐसे लोग मिलते रहेंगे जो विश्वास नहीं करते और इससे वे परेशान और पीड़ित होंगे। हर एक को अपनी निश्चिति अपने ही अन्दर खोजनी चाहिये, सब चीजों के बावजूद इसे बनाये, सम्भाले रखना चाहिये और किसी भी कीमत पर लक्ष्य तक बढ़ते जाना चाहिये। 'विजय' उसी की होती है जो अन्त तक डटा रहता है। सब विरोधों के होते हुए अपनी सहन-शक्ति बनाये रखने के लिए हमारे सहारे का आधार अचल-अटल होना चाहिये और **एक ही** सहारा अचल-अट ल है, वह है 'सत्' का, 'परम सत्य' का सहारा। किसी और को खोजना बेकार है। केवल यही है जो कभी साथ नहीं छोड़ता।

श्रद्धा 'कृपा' द्वारा दिया गया उपहार है

श्रद्धा निश्चित रूप से हमें भागवत कृपा द्वारा दिया गया उपहार है। यह शाश्वत सत्य की ओर सहसा खुलते हुए द्वार की तरह है जिसमें से हम उसे देख सकते हैं, लगभग छू सकते हैं।

मानवजाति के आरोहण में अन्य सब चीजों की तरह इसमें भी व्यक्तिगत प्रयास की जरूरत पड़ती है—विशेषकर प्रारम्भ में। यह सम्भव है कि किन्हीं अपवाद-रूप परिस्थितियों में, किन्हीं ऐसे कारणों से जो हमारी बुद्धि की पकड़ से पूरी तरह बच निकलते हैं, श्रद्धा संयोग की तरह, अप्रत्याशित रूप से आये, चाहे इसके लिए अभ्यर्थना भी न की गयी हो, परन्तु अक्सर यह किसी आकुल पुकार का, आवश्यकता का, अभीप्सा का, सत्ता में किसी ऐसी चीज का प्रत्युत्तर होती है जो ढूंढ़ती है और चाहती है, चाहे वह बहुत सचेतन और क्रमबद्ध रूप में भले न हो। लेकिन, चाहे जैसे भी आयी हो, जब श्रद्धा का उपहार मिल चुका हो, जब यह आकस्मिक, आन्तरिक प्रकाश हो चुका हो तब इसे सक्रिय चेतना में निरन्तर बनाये रखने के लिए व्यक्तिगत प्रयास नितान्त अपरिहार्य है। व्यक्ति को अपनी श्रद्धा को **पकड़े रहना** चाहिये, इसके लिए **संकल्प करना** चाहिये, इसे चाहना चाहिये, इसे बढ़ाना चाहिये, इसे सुरक्षित रखना चाहिये। मानव मन की सन्देह, तर्क और संशय करने की एक बड़ी विकृत और शोचनीय आदत है। बस **इसी जगह** जरूरत पड़ती है मानव-प्रयास की : इन्हें मानने

से इन्कार करना, इनकी बात सुनने से इन्कार करना और इससे बढ़ कर, इनका अनुसरण करने से इन्कार करना। सन्देह और अविश्वास के साथ मानसिक रूप से खेलने से बढ़ कर खतरनाक कोई और खेल नहीं है। वे केवल शत्रु ही नहीं, भयंकर जाल हैं, एक बार कोई इनमें फंस जाये तो उसके लिए अपने-आपको बाहर निकालना अत्यन्त दुष्कर हो जाता है। कुछ ऐसे लोग हैं जो विचारों के साथ खेलने को, उन पर बहस करने को, अपनी श्रद्धा का प्रतिवाद करने को एक बड़ी मानसिक सुरुचि समझते हैं; वे सोचते हैं कि यह उन्हें बहुत ऊंची मनोवृत्ति देती है, और इस तरह वे "अन्धविश्वासों" और "अज्ञान" से ऊपर उठ जाते हैं; लेकिन सन्देह और अविश्वास के इन सुझावों को सुनने से ही तुम घोरतम अज्ञान में जा गिरते हो और सीधे रास्ते से भटक जाते हो। तुम उलझन, भूल और प्रतिवादों की भूलभुलैया में जा घुसते हो...। यह सदा निश्चित नहीं होता कि तुम इसमें से बाहर निकल भी सकोगे। तुम आन्तरिक सत्य से इतनी दूर चले जाते हो कि वह तुम्हारी दृष्टि से ओझल हो जाता है और कभी-कभी तो अपनी अन्तरात्मा के साथ सभी सम्भव सम्पर्क गंवा बैठते हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. १३९, २८४, ३८२-८३

श्रद्धा और भरोसा

भगवान् पर श्रद्धा रखने और भरोसा करने में क्या अन्तर है?

जैसा कि श्रीअरविन्द ने लिखा है, श्रद्धा भरोसे से अधिक, कहीं अधिक पूर्ण है। देखो, तुम्हें भगवान् पर भरोसा है, इस अर्थ में कि तुम्हें विश्वास है कि जो कुछ उनकी ओर से आयेगा वह सदा तुम्हारी अधिकतम भलाई के लिए होगा: उनका जो भी निर्णय हो, उनकी ओर से जो भी अनुभूति आये, वे तुम्हें जिस किसी परिस्थिति में रखें, सब कुछ सदा तुम्हारे अधिक-से-अधिक भले के लिए ही होगा। यह भरोसा है। किन्तु श्रद्धा—भगवान् के अस्तित्व में एक प्रकार की अडिग निश्चितता—श्रद्धा एक ऐसी वस्तु है जो सम्पूर्ण सत्ता पर अधिकार कर लेती है। यह केवल मानसिक, आन्तरात्मिक अथवा प्राणिक ही नहीं होती: वस्तुतः, श्रद्धा समूची सत्ता में होती है। श्रद्धा सीधी अनुभूति की ओर ले जाती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. १३९

यह कभी न भूलो कि तुम अकेले नहीं हो। भगवान् तुम्हारे साथ हैं, तुम्हारी सहायता और तुम्हारा मार्गदर्शन कर रहे हैं। 'वे' ऐसे साथी हैं जो कभी धोखा नहीं देते, ऐसे मित्र हैं जिनका प्रेम दिलासा देता और बल देता है। श्रद्धा रखो और वे तुम्हारे लिए सब कुछ कर देंगे।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. १०

शक्ति के रूप में श्रद्धा

सचमुच एक जीती-जागती श्रद्धा की शक्ति

हर क्षण समस्त अनपेक्षित, अप्रत्याशित और अज्ञात हमारे सामने होता है, हर क्षण विश्व अपने प्रत्येक भाग में और अपनी समग्रता में पुनर्निर्मित होता रहता है। और अगर हमारे अन्दर सचमुच जीती-जागती श्रद्धा होती, अगर हमें तेरी सर्वशक्तिमान् सामर्थ्य और एकमात्र सद्वस्तु के बारे में निरपेक्ष निश्चिति होती तो तेरी अभिव्यक्ति हर क्षण इतनी स्पष्ट होती कि समस्त विश्व उसके द्वारा रूपान्तरित हो जाता। लेकिन जो कुछ हमें चारों ओर से घेरे हुए है और हमसे पहले हो चुका है उसके हम ऐसे दास हैं, जो कुछ अभिव्यक्त हुआ है उसकी सारी राशि के द्वारा हम इतने अधिक प्रभावित होते हैं और हमारी श्रद्धा इतनी दुर्बल होती है कि हम अब भी रूपान्तर के महान् चमत्कार के मध्यस्थ होने में असमर्थ रहते हैं...। लेकिन हे प्रभो, मैं जानती हूं कि एक दिन ऐसा होगा, मैं जानती हूं कि एक दिन आयेगा जब तू उन सबको रूपान्तरित कर देगा जो हमारे नजदीक आते हैं; तू उन्हें ऐसे आमूल रूप से रूपान्तरित कर देगा कि वे पूरी तरह से भूतकाल के बन्धनों से मुक्त हो जायेंगे, वे तेरे अन्दर एकदम नये जीवन के साथ जीना शुरू करेंगे, एक ऐसा जीवन जो पूरी तरह तुझसे बना होगा और तू ही उसका परम प्रभु होगा। और इस तरह सभी चिन्ताएं निरभ्रता में बदल जायेंगी, सभी परिताप शान्ति में, सभी सन्देह निश्चिति में, समस्त कुरूपता सामञ्जस्य में, समस्त अहंकार आत्मदान में, सारा अंधेरा प्रकाश में और सभी दुःख-दर्द अपरिवर्तनशील सुख में बदल जायेंगे। लेकिन क्या तू अब भी ये सब चमत्कार चरितार्थ नहीं कर रहा? मैं उसे हर जगह अपने चारों ओर खिलते हुए देख रही हूं! हे प्रेम और सौन्दर्य के दिव्य विधान, परम मुक्तिदाता, तेरी शक्ति के आगे कोई बाधा नहीं है। केवल हमारी अन्धता ही हमें तेरी सतत विजय के सुखद दृश्य से वञ्चित रखती है।

मेरा हृदय सुख के भजन गाता है और मेरा विचार आनन्द से प्रदीप्त है। तेरा परात्पर और अद्‌भुत प्रेम जगत् का परम स्वामी है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. ३६-३७

शुद्ध श्रद्धा सर्वशक्तिमान् है

... अगर किसी के अन्दर एकदम से पवित्र श्रद्धा, इन सभी चीजों से अछूती, सच्ची श्रद्धा हो, **एकदम सच्ची**, तो कुछ भी असम्भव न होगा। व्यक्ति रातोरात रूपान्तरित हो सकता है, वह अतिमानस को पल भर में उतार ला सकता है, श्रद्धा हो तो व्यक्ति कुछ भी, कुछ भी कर सकता है। लेकिन वह श्रद्धा शुद्ध श्रद्धा होनी चाहिये, उसमें किसी भी तरह की व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं या व्यक्तिगत इच्छा का मिश्रण नहीं होना चाहिये।

शुद्ध श्रद्धा एक सर्वशक्तिमान् और दुर्निवार चीज है। तुम ऐसी श्रद्धा को बहुधा न पाओगे जो सर्वशक्तिमान् और दुर्निवार हो, और यह चीज दिखाती है कि श्रद्धा पूरी तरह से शुद्ध नहीं है। प्रश्न को इस तरह रखना चाहिये : हममें से हर एक में श्रद्धा होती है, उदाहरण के लिए, किसी चीज में श्रद्धा, मान लो अपने अन्दर स्थित भागवत 'उपस्थिति' में श्रद्धा। अगर हमारी श्रद्धा शुद्ध हो तो हम अपने अन्दर स्थित भागवत उपस्थिति से तुरन्त अभिज्ञ हो जायेंगे। यह समझने के लिए बहुत सरल उदाहरण है। तुम्हारे अन्दर श्रद्धा है, वह है तो, लेकिन तुम्हें अनुभव नहीं होता। क्यों? क्योंकि श्रद्धा शुद्ध नहीं है। अगर श्रद्धा पूरी तरह से शुद्ध होती तो चीज तुरन्त हो जाती। यह एकदम सच है। तो अगर तुम इस बात से अभिज्ञ हो जाते हो कि चीज तुरत चरितार्थ नहीं हो रही है तो तुम इस तरह देखना शुरू कर सकते हो : लेकिन यह चरितार्थ क्यों नहीं हुई? मेरी श्रद्धा में क्या है आखिर? और अगर तुम उसी सच्ची निष्कपटता के साथ देखते चलो तो तुम देखोगे कि उसमें बहुत-सी छोटी चीजें हैं, बड़ी नहीं, बस इतनी बड़ी जो घृणास्पद हैं। कितनी ही बार जरा-सा गर्व आ जाता है और फिर कामना, बहुत उग्र नहीं—ऐसी जो अपने आपको बहुत नहीं दिखाती। वह जो तुम्हें महानता देती है, जो तुम्हें शक्ति देगी और जो सन्तोष देगी...।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. ३५६-५७

मैं इस बात पर आग्रह करती हूं कि चीजें जितनी अधिक कठिन हों, तुम्हें उतना ही ज्यादा स्थिर-शान्त होना चाहिये, और तुम्हारे अन्दर उतनी ही अधिक अटल श्रद्धा होनी चाहिये। यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

—श्रीमां

भागवत शक्ति में सच्चा विश्वास रखो

तुम जितने अधिक शान्त रहोगे उतने ही अधिक शक्तिशाली बनोगे। सभी आध्यात्मिक शक्तियों का सुदृढ़ आधार है समचित्तता। किसी चीज को अपना सन्तुलन न बिगाड़ने दो : तब तुम हर प्रकार के आक्रमण का प्रतिरोध कर सकोगे। इसके अतिरिक्त, यदि तुम्हारे पास यथेष्ट विवेक-शक्ति हो और तुम विरोधी सुझावों को पास आते ही देख और पकड़ सको तो उन्हें निकाल बाहर करना और भी सहज हो जाता है; किन्तु कभी-कभी ये अलक्षित रूप से घुस आते हैं और तब इनसे युद्ध करना अधिक कठिन होता है। जब ऐसा हो तो तुम्हें स्थिर होकर बैठ जाना चाहिये और शान्ति तथा गभीर आन्तरिक स्थिरता का आवाहन करना चाहिये। अपने-आपको दृढ़ बनाये रखो, श्रद्धा तथा विश्वास के साथ भगवान् को पुकारो; यदि तुम्हारी अभीप्सा शुद्ध और स्थिर है तो तुम अवश्य सहायता प्राप्त करोगे। विरोधी शक्तियों के आक्रमण अपरिहार्य हैं, तुम्हें इनको अपने मार्ग में परीक्षा के रूप में लेना और इन अग्नि-परीक्षाओं में से साहस के साथ गुजरना चाहये। यह संघर्ष कठिन हो सकता है किन्तु जब तुम इसे पार करके बाहर निकलोगे तो देखोगे कि तुमने कुछ प्राप्त किया है, तुम एक कदम आगे बढ़े हो। विरोधी शक्तियों के होने की भी एक आवश्यकता है। ये तुम्हारे निश्चय को अधिक दृढ़ और तुम्हारी अभीप्सा को अधिक स्पष्ट बनाती हैं। फिर भी, यह सत्य है कि इनका अस्तित्व इसीलिए है कि तुमने इनके अस्तित्व के लिए कारण दे रखा है। जब तक तुम्हारे अन्दर कोई भी चीज ऐसी हो जो इनकी पुकार का उत्तर देती हो तब तक इनका हस्तक्षेप करना सर्वथा उचित है। यदि तुम्हारा कोई भी भाग इन्हें प्रत्युत्तर न दे, यदि तुम्हारी प्रकृति के किसी भी अंग पर इनका वश न हो तो ये शक्तियां लौट जायेंगी और तुम्हें छोड़ देंगी। परन्तु कुछ भी क्यों न हो, ये तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति को रोक या अटका नहीं सकतीं।

विरोधी शक्तियों से युद्ध में तुम्हारी पराजय एक ही कारण से हो सकती है और वह है भगवान् की सहायता में सच्चे विश्वास का न होना। अभीप्सा की सच्चाई आवश्यक सहायता को सदा ले ही आती है। शान्त आवाहन, यह विश्वास कि सिद्धि की ओर आरोहण में तुम कभी अकेले नहीं रहते और यह श्रद्धा कि जब कभी किसी सहायता की आवश्यकता होगी तो

वह सदा उपस्थित होती है—तुम्हें सहज और निरापद रूप से पार लगा देंगे।
—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ३९-४०

प्रयास और श्रद्धा में अडिग बने रहो

... श्रद्धा का अर्थ किसी मतवाद या किसी धर्म पर होने वाला विश्वास नहीं होता, वह गुरु की शिक्षा पर होने वाली श्रद्धा भी नहीं होती; वह तो होता है स्वयं अपनी सम्भावनाओं पर विश्वास, यह दृढ़ प्रतीति कि चाहे जितनी भी कठिनाइयां क्यों न हों, चाहे जितनी बाधाएं क्यों न आयें, चाहे जितनी अपूर्णताएं क्यों न हों, अपनी सत्ता के अन्दर चाहे जितनी नकारात्मक भावनाएं भी क्यों न हों, हम इस सिद्धि को प्राप्त करने के लिए पैदा हुए हैं और इसे अवश्य प्राप्त करेंगे। संकल्प को कभी डगमगाना नहीं चाहिये, प्रयास निरन्तर बना रहना चाहिये और श्रद्धा अडिग होनी चाहिये। फिर जो कुछ सिद्ध करना है उसे सिद्ध करने के लिए वर्षों लगाने के बदले हम उसे कुछ ही महीनों में सिद्ध कर लेंगे, कभी-कभी कुछ दिनों में भी कर सकेंगे और, यदि हमारे अन्दर पर्याप्त तीव्रता हो तो, कुछ घण्टों में भी कर सकेंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि तुम अपने अन्दर एक मनोभाव बना सकते हो और फिर सिद्धि को आक्रान्त करने वाली सब अशुभ इच्छाओं में तुम्हें परास्त करने की शक्ति नहीं होगी जैसे आंधी में शिला को हिलाने की कोई शक्ति नहीं होती।

उसके बाद रास्ता जरा भी कठिन नहीं होता, वह असाधारण रूप में मनोरम बन जाता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. २००-०१

कष्ट का सामना भागवत कृपा में अडिग विश्वास के साथ करो

बिलकुल स्वाभाविक रूप से हम अपने-आपसे पूछते हैं कि वह कौन-सा रहस्य है जिस ओर पीड़ा हमें ले जाती है। एक उथली और अपूर्ण दृष्टिसे देखने पर व्यक्ति यह विश्वास कर सकता है कि यह पीड़ा ही है जिसे अन्तरात्मा खोज रही है। पर बात ऐसी बिलकुल नहीं है। क्योंकि अन्तरात्मा का अपना निजी स्वभाव है स्थिर, अपरिवर्तनशील, निरपेक्ष और परमाह्लादकारी दिव्य आनन्द। परन्तु यह सच है कि यदि व्यक्ति कष्ट का साहस, सहिष्णुता और भागवत कृपा में अडिग विश्वास के साथ सामना कर सके और जब कभी कष्ट आये तो उससे

बचते फिरने के स्थान पर इस संकल्प और इस अभीप्सा के साथ उसे अंगीकार करे कि इसमें से पार होना और उस ज्योतिर्मय सत्य एवं अपरिवर्तनीय आनन्द को खोज निकालना है जो सभी वस्तुओं के अन्तस्तल में विद्यमान है तो पीड़ा का द्वार इच्छा-तुष्टि या तृप्ति की अपेक्षा अधिक सीधा और अधिक समीप होता है। मैं ऐन्द्रिय सुख के बारे में नहीं कह रही हूं क्योंकि वह तो लगातार और लगभग पूरी तरह इस अगाध दिव्य आनन्द की ओर से पीठ फेरे रहता है।

ऐन्द्रिय सुख धोखा देने वाला और विकृत छद्मरूप है जो हमें अपने लक्ष्य से भटका कर दूर ले जाता है। यदि हम सत्य को पाने के लिए उत्सुक हैं तो निश्चय ही हमें इसकी खोज नहीं करनी चाहिये। यह सुख हमें सारहीन बना देता है, हमें ठगता और भटकाता है। पीड़ा हमें एकाग्रचित्त होने के लिए विवश कर देती है ताकि हम उस कुचलने वाली चीज को सहने और उसका सामना करने में समर्थ बन सकें। इस प्रकार वह हमें गभीरतर सत्य की ओर वापस ले जाती है। यदि व्यक्ति सबल हो तो दुःख में ही सबसे आसानी से सच्ची शक्ति प्राप्त करता है। दुःख में पड़ कर ही फिर से सच्चे श्रद्धा-विश्वास को प्राप्त करना सबसे आसान होता है—किसी ऐसी चीज में विश्वास जो सब दुःखों से ऊपर और परे है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. ४६-४७

भय को दूर करने का उपाय

अगर तुम्हारे अन्दर श्रद्धा है और तुम भगवान् के प्रति निवेदित हो तो एक बहुत सरल-सा उपाय है। वह यह है, यूं कहो: "तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। मुझे कोई चीज नहीं डरा सकती क्योंकि तुम ही मेरे जीवन को रास्ता दिखा रहे हो। मैं तुम्हारा हूं और तुम ही मेरे जीवन का मार्गदर्शन कर रहे हो।" यह बात तुरन्त क्रिया करती है। सभी उपायों में यह उपाय सबसे बढ़ कर प्रभावशाली है: वास्तव में है। यानी, व्यक्ति को सचमुच भगवान् के प्रति निवेदित होना चाहिये। यह हो तो तुरन्त क्रिया होती है। सारा भय सपने की तरह तुरन्त गायब हो जाता है, और सपने के साथ-ही-साथ बुरा प्रभाव डालने वाली सत्ता भी सपने की तरह गायब हो जाती है। तुम्हें उसे पूरी तेजी के साथ दौड़ते हुए देखना चाहिये, पट, पट, पट! तो यह रहा उपाय।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. १२९

शरीर में श्रद्धा

उदाहरणार्थ, शरीर पर भी, जब उस पर आक्रमण की तरह कुछ हो, जब उस पर कोई दुर्घटना, कोई रोग आदि आने की कोशिश करते हैं—कुछ भी —शरीर पर कोई भी आक्रमण, तो जो शरीर अपनी सहज प्राकृतिक अवस्था में रहने दिया गया है, उसमें सहायता पाने के लिए एक ललक, एक अभीप्सा, एक सहज संकल्प होता है। किन्तु ज्यों ही यह सारी बात मस्तिष्क तक पहुंचती है, वह उन्हीं चीजों का रूप ले लेती है जिनका व्यक्ति अभ्यस्त होता है : और तब सब कुछ बिगड़ जाता है। किन्तु शरीर के वास्तविक स्वरूप को देखा जाये तो पता लगेगा कि उसमें एक ऐसी वस्तु है जो अचानक ही जाग कर सहायता की पुकार करने लगती है, इतनी श्रद्धा के साथ, इतनी तीव्रता के साथ जैसे कोई छोटा बच्चा अपनी मां को, या जो कोई भी वहां हो, उसे पुकारता है, यदि वह बोलना नहीं जानता तो कुछ कहता नहीं। किन्तु शरीर को यदि स्वयं उसी पर छोड़ दिया जाये और मन भी उस पर इस तरह का सतत कार्य न करता रहे तो... हां, तो शरीर में यह बात होती है : ज्यों ही उसमें कोई विक्षोभ पैदा होता है, तत्काल ही उसमें एक अभीप्सा, एक पुकार, सहायता पाने के लिए एक प्रयत्न जाग उठता है, और इसमें बहुत शक्ति होती है। यदि इसमें कोई हस्तक्षेप न करे, तो उसमें बहुत शक्ति होती है, मानों स्वयं शरीर के कोषाणु ही अभीप्सा और पुकार के लिए उछल पड़े हों।...

शरीर को स्वयं उसी पर छोड़ दिया जाये तो वह विलक्षण है, क्योंकि, वह समता एवं स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए केवल अभीप्सा ही नहीं करता, बल्कि अपने अन्दर सन्तुलन भी स्थापित कर सकता है। यदि व्यक्ति अपने शरीर को अकेला छोड़ दे और समस्त विचारों, प्राणिक प्रतिक्रियाओं, अवसादों, तथाकथित ज्ञान, मानसिक रचनाओं और भयों को उसमें हस्तक्षेप न करने दे—शरीर को स्वयं उसी पर छोड़ दे, तो वह स्वाभाविक रूप में ही अपने-आपको स्वस्थ करने के लिए वह सब कुछ कर लेगा जो उसके लिए आवश्यक है। अपनी स्वाभाविक अवस्था में, शरीर सन्तुलन को, सामञ्जस्य को ही पसन्द करता है; यह तो सत्ता के दूसरे भाग हैं जो सब कुछ बिगाड़ देते हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. १५९-६१

श्रद्धा रखो। ऐसा कोई रोग नहीं है जो 'भागवत कृपा' द्वारा ठीक न हो सके।

अन्धविश्वास या विश्वास!

अगर हमारे पास आपकी तस्वीरवाली अंगूठी या कोई अन्य गहना हो, तो क्या वह हमारी रक्षा करता है?

यह विशेष रूप से इस पर निर्भर करता है कि तुम उसके बारे में क्या सोचते हो! जो चीज मैं तुम्हें अपने हाथों से देती हूं—उसमें मैं कुछ रख देती हूं; लेकिन अगर तुमने खुद एक अंगूठी या तस्वीर, या कोई और चीज चुनी है, और तुम उसे पहनते हो... अगर तुम्हारे अन्दर यह विश्वास है, यह श्रद्धा है कि वह चीज तुम्हारी रक्षा करती है, तो वह रक्षा करती है। जब वह चीज **मैं** देती हूं तब मैं उस चीज के साथ, उससे पूरी तरह भिन्न कुछ और भी देती हूं। अगर मैं उसमें यह चीज रखूं तो वह होती है, अगर न रखूं, तो नहीं होती। जानते हो, श्रीअरविन्द कहा करते थे कि उनकी तस्वीरवाली कोई अंगूठी पहनना, और यह सोचना कि वह तुम्हारी रक्षा करती है, एक अन्धविश्वास है! वे तुमसे कहेंगे कि यह एक अन्धविश्वास है! यानी, यह तुम्हारे सोचने पर निर्भर करता है...। यह पूरी तरह इस पर निर्भर करता है कि तुम इस बारे में क्या सोचते हो। अगर उन्होंने तुम्हें एक अंगूठी यह कहते हुए दी होती कि "इसे पहनो, मेरी शक्ति तुम्हारे साथ रहेगी," तो बात बिलकुल अलग होती; जमीन-आसमान का फर्क है।
—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. २६६-६७

सहज और निस्स्वार्थ प्रार्थना

एक तरह की प्रार्थना सहज और निस्स्वार्थ होती है, एक बहुत बड़ी पुकार की न्याईं जो साधारणतः व्यक्तिगत रूप से अपने लिए न होकर भगवान् की मध्यस्थता के लिए निवेदन के रूप में की जा सकती है। यह बहुत शक्तिशाली होती है। मैंने ऐसे अनगिनत उदाहरण देखे हैं जिनमें इस प्रकार की प्रार्थना के कारण चीजें तुरन्त चरितार्थ हुई हैं। इसमें बहुत ज्यादा श्रद्धा, बहुत उत्साह, बहुत सच्चाई और निष्कपटता तथा हृदय की बहुत अधिक सरलता होनी चाहिये, ऐसी चीज होनी चाहिये जो लेखा-जोखा नहीं करती, योजना नहीं बनाती, मोल-भाव नहीं करती और जब देती है तो बदले में कुछ पाने के विचार से नहीं। क्योंकि अधिकतर लोग एक हाथ

से देते हैं और दूसरा हाथ बदले में कुछ पाने के लिए फैलाए रखते हैं, प्रार्थनाओं की सबसे अधिक संख्या इसी तरह की होती है। लेकिन और तरह की प्रार्थनाएं भी होती हैं जिनका मैंने उल्लेख किया है, कृतज्ञता-प्रकाशन की, एक प्रकार के भजन, और ये प्रार्थनाएं बहुत अच्छी होती हैं।

नैतिक अवस्था बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण होती है

ऐसे साधु हैं, तुम जानते हो, जो साधुत्व के लिए गन्दे जीवन की अवस्था स्वीकार करते हैं। वे कभी स्नान नहीं करते और स्वास्थ्य की दृष्टि से जो चीजें जरूरी हैं उनमें से कोई चीज उनके पास नहीं होती। वे सचमुच गन्दी स्थिति में रहते हैं—और वे सब बीमारियों से अछूते रहते हैं। शायद इसलिए कि उनमें श्रद्धा होती है और वे जान-बूझकर ऐसा करते हैं। उनकी मनोदशा बहुत अच्छी होती है...। मैं निष्कपट लोगों की बात कर रही हूं, ढोंगियों की नहीं। उनमें श्रद्धा होती है। वे अपने शरीर के बारे में नहीं सोचते, वे अपनी अन्तरात्मा के जीवन के बारे में ही सोचा करते हैं। उन्हें कोई बीमारी नहीं होती। उनमें से कुछ ऐसी स्थिति में पहुंच जाते हैं जिसमें एक भुजा या एक पैर या शरीर का कोई और भाग उनकी तपस्या के आसन आदि के कारण बिलकुल अकड़ जाता है। वे उसे बिलकुल हिला तक नहीं सकते; कोई और हो तो ऐसी स्थिति में मर जाये; परन्तु वे जीवित रहते हैं, क्योंकि उनमें श्रद्धा होती है और वे यह किसी प्रयोजन से करते हैं। यह ऐसी चीज है जो उन्होंने अपने ऊपर स्वयं लगायी है। इसलिए नैतिक अवस्था भौतिक अवस्था से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। अगर तुम ऐसे वातावरण में हो जहां सभी साफ-सुथरे रहते हैं और वहां तुम तीन दिन भी बिना नहाये रहो तो बीमार पड़ जाओगे। कहने का मतलब यह नहीं कि तुम्हें नहाना नहीं चाहिये! हम साधु नहीं होना चाहते, हम योगी होना चाहते हैं। और ये दोनों चीजें एक ही नहीं हैं। और हम चाहते हैं कि शरीर भी योग में भाग ले। इसलिए उसे स्वस्थ रखने के लिए जो कुछ जरूरी है, वह हमें करना चाहिये। फिर भी, यह सब तुम्हें यह बताने के लिए है कि नैतिक अवस्था भौतिक अवस्था से बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण होती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. १५७, १८८-८९

भागवत शक्ति को ग्रहण करने की अक्षमता

तुमसे कहा गया है : "तुम अपने-आपको खोलो, तुम्हें 'शक्ति' प्राप्त होगी।" तुमसे कहा गया है : "श्रद्धा रखो और सद्‌भावना की स्थिति में रहो तो तुम सुरक्षित रहोगे।" और तुम सचमुच 'चेतना' में नहाते हो, तुम 'शक्ति' में नहाते हो, 'संरक्षण' में नहाते हो और तुम्हारे अन्दर जितनी श्रद्धा होगी, तुम जितने खुलोगे उसी अनुपात में तुम्हें यह सब मिलेगा और इससे तुम्हें ठीक रहने में सहायता मिलेगी। तुम छोटे-मोटे आन्तरिक असन्तुलन को अस्वीकार कर सकोगे और वे आ भी जायें तो तुम फिर से व्यवस्था स्थापित कर सकोगे और तुम छोटे-मोटे आक्रमणों या आ सकने वाली दुर्घटनाओं से सुरक्षित रहोगे। लेकिन अगर तुम्हारी सत्ता के किसी भाग में—तुम्हारे शरीर में या तुम्हारे प्राण में या मन में भी, कई भागों में या केवल एक में ही—उतरती हुई 'शक्ति' को ग्रहण करने की अक्षमता है तो वह मशीन में रेत का काम करेगी। तुम जानते हो, एक सुन्दर-सी मशीन जो अच्छी तरह चलती है, सब कुछ ठीक-ठीक चल रहा है, तुम उसमें जरा-सी रेत डाल दो (कुछ नहीं, बस रेत का एक कण), अचानक सब कुछ बिगड़ जाता है और मशीन रुक जाती है। हां, तो ग्रहणशीलता का कहीं पर जरा-सा अभाव, कोई ऐसी चीज जो 'शक्ति' को ग्रहण न कर सके, जो इस तरह पूरी-पूरी बन्द हो (देखने पर वह कहीं एक छोटे-से काले बिन्दु जैसी हो जाती है, एक छोटी-सी, पत्थर जैसी सख्त चीज जिसे 'शक्ति' भेद नहीं सकती, वह उसे ग्रहण करने से इन्कार करती है—या तो वह कर नहीं सकती या करना नहीं चाहती), और तुरन्त उससे एक बड़ा असन्तुलन पैदा हो जाता है। और वह चीज जो उठ रही थी, है न, जो इतनी अच्छी तरह खिल रही थी, बीमार हो जाती है, और कभी-कभी ठीक ऐसे समय जब तुम पूरे सन्तुलन में थे, पूरे स्वस्थ थे, सब कुछ ठीक चल रहा था और शिकायत का कोई मौका न था। एक दिन जब तुम कोई नया विचार समझ पाये हो, जब तुम्हें कोई नयी प्रेरणा मिली है, तुम्हारे अन्दर बड़ी अभीप्सा जागी है और महान् शक्ति प्राप्त हुई है, जब तुम्हें एक भव्य अनुभूति हुई है, एक ऐसी सुन्दर अनुभूति जो तुम्हारे अन्दर के द्वार खोल देती है, जो तुम्हें ऐसा ज्ञान देती है जो तुम्हें पहले प्राप्त न था, तभी जब तुम्हें विश्वास है कि सब कुछ ठीक चल रहा है...। दूसरे ही दिन तुम

बीमार पड़ जाते हो। तब तुम कहते हो : "फिर से यह? यह असम्भव है! यह तो नहीं होना चाहिये।" लेकिन यह बस वही चीज है जिसे मैंने "रेत का कण" बतलाया है। कोई ऐसी चीज थी जो ग्रहण न कर सकती थी; तुरन्त उसने असन्तुलन पैदा कर दिया। बहुत ही छोटी-सी चीज भी काफी होती है, और तुम बीमार पड़ जाते हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. १९५-९६

श्रद्धा और उपचार

तुम्हें यह जानना चाहिये कि श्रद्धा और विश्वास किस द्रव्य से बने हैं। क्योंकि, अगर तुम सामान्य रूप से रहते हो, बिलकुल सामान्य परिस्थितियों में—ऊलजलूल विचारों और अवसादकारी शिक्षा के बिना—तो, सारी जवानी में और सामान्यतः जब तक तुम तीस के न हो जाओ, तुम्हें जीवन पर पूरा-पूरा विश्वास होता है। उदाहरण के लिए, यदि तुम ऐसे लोगों से न घिरे होओ जो तुम्हें जरा-सा जुकाम या सिर-दर्द होने से ही घबरा दें और दौड़े-दौड़े डॉक्टर के पास जायें और तुम्हें दवाइयां दें—अगर तुम साधारण परिस्थितियों में हो और तुम्हें कुछ हो जाये, कोई दुर्घटना या जरा-सी बीमारी, तो शरीर में यह निश्चिति रहती है, पूरा-पक्का विश्वास रहता है कि वह ठीक हो जायेगी : "यह कुछ नहीं है। यह चली जायेगी। यह जरूर चली जायेगी। मैं कल, या कुछ दिनों में बिलकुल ठीक हो जाऊंगा। यह निश्चय ही ठीक हो जायेगी,"—फिर तुम्हें चाहे कुछ क्यों न हुआ हो। वास्तव में, शरीर की यही स्वाभाविक दशा है। एक पक्का विश्वास कि सारा जीवन सामने है और सब कुछ ठीक होगा। और यह बहुत बड़ी सहायता करता है। तुम दस में से नौ बार रोगमुक्त हो जाते हो। तुम इस विश्वास के साथ बहुत जल्दी रोगमुक्त हो जाते हो : "यह कुछ भी नहीं है, आखिर यह है क्या? एक छोटी-सी दुर्घटना, यह गुजर जायेगी। यह कुछ भी नहीं है।" और ऐसे लोग हैं जो इसे बहुत लम्बे समय तक बनाये रखते हैं, बहुत लम्बे समय तक, एक प्रकार का विश्वास—उन्हें कुछ नहीं हो सकता। उनका सारा जीवन उनके सामने है, पूरा-पूरा, उन्हें कुछ नहीं हो सकता। और उन्हें जो भी हो उसका कोई महत्त्व नहीं है। सब कुछ ठीक हो जायेगा। उसे ठीक होना पड़ेगा। सारा जीवन उनके सामने है।

स्वाभाविक है कि यदि तुम ऐसे वातावरण में रहते हो जहां रुग्ण विचार हैं और लोग अपना समय अनर्थकारी, संकटकारी बातों को दोहराते रहने में लगाते हैं, तो तुम गलत तरीके से सोचोगे और अगर तुम गलत तरीके से सोचो तो शरीर पर इसकी प्रतिक्रिया होती है। अन्यथा अपने-आपमें शरीर इस विश्वास को चालीस-पचास की उम्र तक रख सकता है—यह व्यक्तियों पर निर्भर होता है—कुछ लोग स्वाभाविक सन्तुलित जीवन जीना जानते हैं। लेकिन शरीर को अपने जीवन के बारे में पूरा विश्वास होता है। केवल, जैसा कि मैंने कहा, यदि विचार बीच में आकर सब प्रकार की रुग्ण और अस्वस्थ कल्पनाएं ले आयें, तो उससे सब कुछ बदल जाता है। मैंने ऐसे उदाहरण देखे हैं। ऐसे बच्चे जिनके साथ छोटी-मोटी दुर्घटना हो गयी। उनमें से एक दौड़ता, खेलता रहा, किसी ने उसकी परवाह तक न की और चीज तुरन्त ठीक हो गयी।

ऊर्जस्वी श्रद्धा

अब जब तुम "क्रियाशील श्रद्धा" की बात कर रहे हो : क्रियाशील श्रद्धा कुछ भिन्न वस्तु है। अगर व्यक्ति के अन्दर भागवत कृपा पर श्रद्धा है कि भागवत कृपा उस पर नजर रखे हुए है और चाहे कुछ भी क्यों न हो जाये, भागवत कृपा तो है ही, उसकी निगरानी कर रही है तो वह इस श्रद्धा को हमेशा सारे जीवन रख सकता है, और यह हो तो खतरों में से गुजर सकता है, सब प्रकार की कठिनाइयों का सामना कर सकता है और कोई उसका बाल भी बांका न कर सकेगा, क्योंकि उसे श्रद्धा है और भागवत कृपा उसके साथ है। यह अनन्तगुना शक्तिशाली, अधिक सचेतन, और अधिक स्थायी शक्ति है जो तुम्हारे शारीरिक गठन की अवस्था पर निर्भर नहीं करती, जो भागवत कृपा के सिवा किसी अन्य पर निर्भर नहीं है और इसलिए सत्य का सहारा लेती है और कोई चीज उसे हिला नहीं सकती। यह बिलकुल भिन्न है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. ३२५-२७

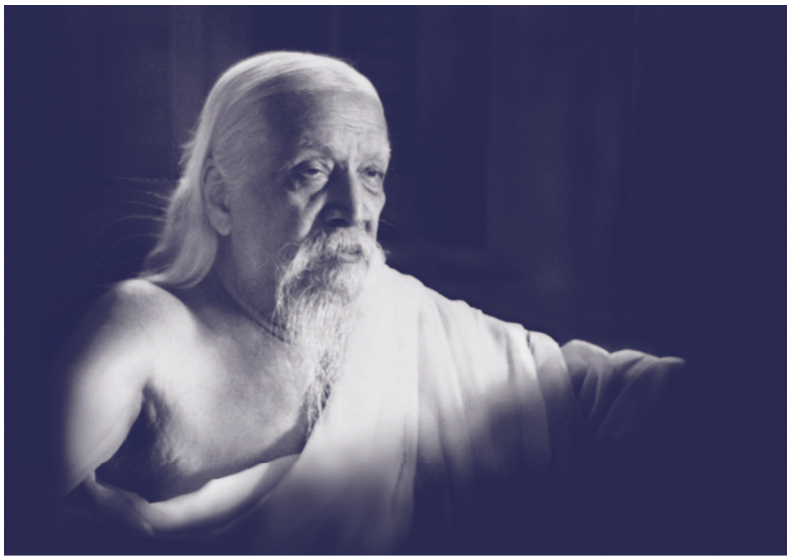

"हर हालत में अपने गुरु के प्रति निष्ठावान् बने रहो, वे चाहे कोई भी क्यों न हों; तुम जितनी दूर तक जा सको वे तुम्हें उतनी दूर तक ले जायेंगे। लेकिन अगर तुम्हें भगवान् को ही गुरु के रूप में पाने का सौभाग्य प्राप्त हो तो तुम्हारी उपलब्धि की कोई सीमा न होगी।"

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. ५७

श्रद्धा का पुल बांधना

भगवान् के बिना जगत् हो ही नहीं सकता

व्यक्ति एक विशेष पूर्णता का प्यासा होता है, शायद वह अपना अतिक्रमण भी करना चाहता है, वह जो कुछ है उससे ऊंचा होना चाहता है; अगर कोई समाजसेवक है तो उसकी अभीप्सा होती है कि मानवजाति ज्यादा अच्छी हो जाये या कम दुःखी और कम दरिद्री हो; और इसी तरह की अन्य चीजें। उसके लिए योग किया जा सकता है, परन्तु यह विश्वास करना नहीं है। विश्वास करने का मतलब यह है कि तुम्हें यह श्रद्धा हो कि भगवान् के बिना जगत् हो ही नहीं सकता, कि जगत् का अस्तित्व ही यह प्रमाणित करता है कि भगवान् का अस्तित्व है। और केवल "विश्वास या मान्यता" नहीं, कोई ऐसी चीज नहीं जिसके बारे में तुमने पहले से सोच रखा है या जो तुम्हें सिखायी गयी है, नहीं, ऐसा कुछ नहीं : केवल श्रद्धा। एक ऐसी श्रद्धा जो जीवित ज्ञान है, प्राप्त किया हुआ ज्ञान नहीं, यह कि जगत् का अस्तित्व भगवान् को प्रमाणित करने के लिए काफी है। भगवान् के बिना कोई जगत् नहीं। देखो, यह इतना स्पष्ट है कि ऐसा लगता है कि इससे विपरीत सोचने के लिए तुम्हें कुछ मन्द-बुद्धि होना होगा। और "भगवान्" भी "प्रयोजन", "लक्ष्य" या "उद्देश्य" के अर्थ में नहीं, इस तरह की चीज नहीं : जगत् जैसा कि वह है, भगवान् को प्रमाणित करता है; क्योंकि वह किसी रूप में, किसी विकृत रूप में ही सही, फिर भी है भगवान्...

मेरे लिए यह इससे भी अधिक प्रबल है। मैं एक गुलाब को देखती हूं, एक ऐसी चीज को जिसमें सहज सुन्दरता की घनता है, जो मानव-निर्मित नहीं है, सहज-स्वाभाविक प्रस्फुटन है; उसे देखना भर इस बात में निश्चित होने के लिए काफी है कि कोई भगवान् हैं। यह निश्चिति है। विश्वास न करना असम्भव है, तुम ऐसा नहीं कर सकते। यह उन लोगों की तरह है (यह है विलक्षण!) जो लोग 'प्रकृति' का अध्ययन करते हैं, सचमुच पूरी तरह से अध्ययन करते हैं, यह देखते हैं कि हर चीज कैसे कार्य करती है, पैदा की जाती और अस्तित्व रखती है—भगवान् के अस्तित्व पर पूरी तरह विश्वास किये बिना, सावधानी और एकाग्रता के साथ दत्तचित्त होकर व्यक्ति निष्कपट रूप से अध्ययन कर ही कैसे सकता है? हम उसे भगवान् कहते हैं—भगवान्

छोटा-सा है! *(माताजी हंसती हैं)* मेरे लिए अस्तित्व इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि... 'तत्' के सिवाय और कुछ नहीं है—यह एक ऐसी चीज है जिसे हम नाम नहीं दे सकते, जिसका वर्णन नहीं कर सकते, निरूपण नहीं कर सकते पर जिसे हम अनुभव कर सकते हैं और अधिकाधिक रूप में वही बन सकते हैं। कोई ऐसी चीज जो समस्त पूर्णताओं से अधिक पूर्ण, सभी सुन्दरताओं से अधिक सुन्दर, सभी अद्‌भुत वस्तुओं से अधिक अद्‌भुत है, यहां तक कि उसको, जो कुछ अस्तित्व धारण करता है, उस सबके द्वारा भी व्यक्त नहीं किया जा सकता। और उस 'तत्' के सिवाय और कुछ है ही नहीं। और वह कोई ऐसी चीज नहीं है जो शून्य में तैरती हो; 'तत्' के सिवाय और कुछ भी नहीं है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ३८५-८६

महत्त्वाकांक्षा से रञ्जित श्रद्धा

माताजी, "महत्त्वाकांक्षा से रञ्जित अहम्मयी श्रद्धा" का क्या अर्थ है?

हां, उदाहरण के लिए, अगर तुम कोई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बनना, ऊंचा पद प्राप्त करना या अपने अगल-बगल के व्यक्तियों की प्रशंसा पाना, बड़ा साधक बनना, बड़ा संन्यासी बनना, महायोगी बनना, इत्यादि चाहो, कोई बहुत ही महत्त्वपूर्ण व्यक्ति, तो यह कहलायेगी महत्त्वाकांक्षापूर्ण श्रद्धा। तुम्हारे अन्दर यह श्रद्धा होती है कि यह चीज सिद्ध हो सकती है, तुम्हारे अन्दर भगवान् के लिए श्रद्धा होती है, लेकिन होती है तुम्हारे अपने तुच्छ मिथ्या गौरव के लिए; और यह कोई पवित्र, सच्ची और सीधी चीज नहीं रहती। वह ऐसी चीज है जो पूरी तरह व्यक्तिगत लाभ के लिए होती है। स्वाभाविक है कि वहां आत्म-समर्पण का कोई सवाल ही नहीं उठता; यह शक्तियों का सञ्चय करना है, यथासम्भव सञ्चय, यानी, सच्ची गतिविधि के बिलकुल विपरीत गतिविधि। हम जितना समझते हैं उससे बहुत अधिक बार ऐसा होता है...। महत्त्वाकांक्षा का यह मनोवेग अक्सर सत्ता की गहराई में छिपा रहता है और वह तुम्हें धकेलता है, यूं पीछे से...। वह तुम्हें कोड़े लगाता है ताकि तुम आगे बढ़ो। यह एक प्रकार का प्रच्छन्न घमण्ड है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. २७०-७१

श्रद्धा रखो कि हमेशा सर्वोत्तम घटित होता है

हम तत्काल उसे अच्छे-से-अच्छा न भी मानें, क्योंकि हम अज्ञानी और अन्धे हैं, क्योंकि हम चीजों का परिणाम नहीं देखते, और यह नहीं देखते कि बाद में क्या होगा। लेकिन हमें यह श्रद्धा रखनी चाहिये कि अगर ऐसा है, अगर हम भगवान् पर भरोसा रखें, अगर हम अपना पूरा दायित्व उन्हें सौंप दे, अगर हम उन्हें अपने लिए हर चीज का फैसला करने दें, तो हमें यह जानना चाहिये कि हमेशा वही होगा जो हमारे लिए अच्छे-से-अच्छा है। यह निरपेक्ष तथ्य है। तुम्हारे लिए उसी हद तक अच्छे-से-अच्छा होगा जिस हद तक तुम समर्पण करोगे। हो सकता है कि यह तुम्हारी इच्छा, तुम्हारी पसन्द या कामना के अनुरूप न हो, क्योंकि ये चीजें अन्धी होती हैं : यह आध्यात्मिक दृष्टिकोण से अच्छे-से-अच्छा है, तुम्हारी प्रगति के लिये, तुम्हारे विकास के लिए, तुम्हारे आध्यात्मिक विकास और तुम्हारे **सच्चे** जीवन के लिए अच्छे-से-अच्छा है। हमेशा यही होता है। तुम्हें यह श्रद्धा रखनी चाहिये, क्योंकि श्रद्धा भगवान् में विश्वास की और भगवान् के प्रति तुम्हारे पूर्ण आत्म-समर्पण की अभिव्यक्ति है। और जब तुम यह आत्मदान करते हो तो वह एक अद्‌भुत चीज होती है। यह तथ्य है। ये कोरे शब्द नहीं हैं, तुम समझ रहे हो न, यह एक तथ्य है। तुम अतीत पर नजर डालो तो तुम अनुभव करोगे कि बहुत प्रकार की चीजें, जिन्हें तुम उस समय नहीं समझ पाये थे जब वे हुई थीं, **ठीक** वही थीं जिनका होना जरूरी था ताकि वे तुम्हें प्रगति करने के लिए बाधित कर सकें। **हमेशा,** बिना अपवाद के। यह तो हमारा अन्धापन ही हमें यह देखने से रोकता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ३९५-९६

... जो डरते हैं वे सब जगह डरते हैं और जिसमें श्रद्धा है वह हर जगह सुरक्षित है।

सर्वोत्तम सुरक्षा है भागवत कृपा में अचल श्रद्धा।

संरक्षण सक्रिय है और वह तभी प्रभावकारी हो सकता है जब तुम्हारी ओर से स्थायी और सम्पूर्ण श्रद्धा हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. ५१

आत्मविश्वास से और भगवान् पर श्रद्धा से भरी हंसी दुश्मन को सबसे अधिक तहस-नहस कर देने वाली शक्ति है—वह शत्रु के मोर्चे को तोड़ देती है, उसकी सेनाओं में खलबली मचा देती है और तुम्हें विजयी के रूप में आगे बढ़ाती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १५४

हमेशा श्रद्धा बनाये रखो

"हमेशा दोष और गलत गतियों को देखते रहना अवसाद लाता है और उससे श्रद्धा का उत्साह भंग होता है।" वह श्रद्धा का उत्साह भंग कैसे करता है?

यहां जिस श्रद्धा की बात की गयी है वह भागवत 'कृपा' और उद्यम की सुनिश्चित सफलता में श्रद्धा है। तुमने योग शुरू किया है और तुम्हें श्रद्धा है कि तुम योग के लक्ष्य तक जा पहुंचोगे। लेकिन अगर तुम अपना सारा समय उन सब चीजों को देखते रहने में लगाओ जो तुम्हें आगे बढ़ने से रोकती हैं, तो अन्ततः तुम कहोगे : "हाय, मैं कभी सफल न होऊंगा! यह सम्भव नहीं है। अगर इसी तरह चलता रहा तो मैं कभी वहां तक न पहुंच पाऊंगा।" यह है श्रद्धा खोना। तुम्हें हमेशा यह श्रद्धा रखनी चाहिये कि तुम निश्चित रूप से सफल होओगे।

बहुत-से लोग शुरू करते हैं, और फिर कुछ समय के बाद आकर कहते हैं : "ओह, मैं कभी पार न लग सकूंगा। मेरे आगे बहुत ज्यादा कठिनाइयां हैं।" इसका अर्थ है श्रद्धा का अभाव। अगर तुम शुरू करते हो तो इस श्रद्धा के साथ शुरू करते हो कि तुम लक्ष्य तक पहुंचोगे। यह श्रद्धा अन्त तक बनाये रखनी चाहिये। श्रद्धा रखने से तुम लक्ष्य पा लेते हो। लेकिन अगर बीच रास्ते से ही तुम लौट पड़ो और कहो : "नहीं, नहीं, यह मुझसे न होगा," तो स्पष्ट है कि तुम लक्ष्य तक न पहुंचोगे। कुछ लोग मार्ग पर चलना शुरू करते हैं और फिर, कुछ समय बाद, उन्हें यह भारी, थकाने वाला, कठिन लगने लगता है। उन्हें लगता है कि स्वयं वे और उनके पांव ठीक नहीं चल पाते, उनके पैरों में दर्द होने लगता है आदि-आदि। वे कहते हैं : "ओह, आगे बढ़ना बहुत कठिन है।" तो यह कहने की जगह कि "मैं चल पड़ा हूं और पूरा करके रहूंगा,"— कहने लायक बात तो यही है—वे वहीं ठिठक जाते हैं, खड़े हो जाते हैं और झींखते हुए कहते हैं : "ओह, मैं कभी सफल न हो पाऊंगा।" और फिर वे मार्ग छोड़ देते हैं। तो, स्पष्ट ही है कि अगर वे मार्ग छोड़ देंगे तो उन्हें कभी सफलता न मिलेगी। यह है अपनी श्रद्धा खो बैठना।

श्रद्धा बनाये रखने का मतलब है यूं कहना : "अच्छा, मेरी राह में कठिनाइयां हैं, पर मैं चलता रहूंगा।" निराशा—वही है जो तुम्हारे पांव काट देती है, तुम्हें

रोक देती है और तुम्हें यह कहने की स्थिति में छोड़ देती है: "सब कुछ खतम, मैं अब और नहीं बढ़ सकता।" और तब वह सचमुच खतम हो जाता है। यह ऐसी चीज है जिसे कभी न होने देना चाहिये।

जब तुमने शुरू किया है तो तुम्हें ठीक अन्त तक जाना चाहिये। कभी-कभी जब लोग मेरे पास बड़े उत्साह के साथ आते हैं तो मैं उनसे कहती हूं: "जरा सोच लो, यह सरल मार्ग नहीं है, तुम्हें समय की जरूरत होगी, तुम्हें धीरज की जरूरत होगी। तुम्हें बहुत ज्यादा सहनशक्ति की, बहुत अध्यवसाय की, साहस की और अनथक सद्भावना की जरूरत होगी। पहले देख लो, सोच लो, क्या तुम इन सबको करने के योग्य हो, उसके बाद शुरू करो। लेकिन एक बार शुरू कर दो, तो बस, खतम, उसके बाद वापिस जाने का सवाल नहीं रहता; तुम्हें एकदम अन्त तक जाना ही होगा।"

कभी-कभी मैं उनसे कहती हूं, मैं उनसे कहती हूं कि मैं तुम्हें कुछ दिन या कुछ महीने देती हूं। कुछ तो ऐसे लोग हैं जिन्हें मैंने सोच-विचार के लिए कुछ वर्षों का समय दिया है। मैंने उनसे कहा: "अच्छी तरह देख लो, पूरा निश्चय कर लो।" लेकिन जब वे आकर कहते हैं: "मैंने फैसला कर लिया है, मैं शुरू करना चाहता हूं," यह ठीक है। तो अब, अन्तिम छोर तक जाना चाहिये, चाहे उसके लिए कितनी भी कीमत क्यों न चुकानी पड़े। चाहे वह बहुत मुश्किल क्यों न हो, तुम्हें अन्तिम छोर तक जाना ही चाहिये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ४९६-९७

कभी शेखी मत बघारो

कितनी बार, जब कोई शेखी बघारता है... चाहे वह कितने ही बचकाने ढंग से क्यों न हो... जब कभी कोई किसी चीज के बारे में शेखी बघारता है: "ओह, इसके बारे में मुझे विश्वास है, मैं यह भूल कभी न करूंगा", तो मैं तुरन्त किसी विरोधी शक्ति को उधर से यूं गुजरते देखती हूं और वह शेखी के द्वारा बने हुए छोटे-से छेद में से अन्दर घुस जाती है। वह अन्दर, यूं घुसती है, फिर, फैल जाती है, और तुमसे ठीक वही चीज करवाने की कोशिश करती है जो तुम नहीं करना चाहते। लेकिन यह उसका मनोरञ्जन होता है, यह निश्चय ही तुम्हारी प्रगति में सहायता करने के लिए नहीं होता। *(माताजी हंसती हैं)* लेकिन अगर तुम इसे ठीक तरह से लेना जानो, तो यह

चीज तुम्हारी प्रगति में सहायक हो सकती है। तुम कहो: "अच्छा, अब मैं दोबारा शेखी न बघारूंगा।"

चूंकि ये शक्तियां मानसिक और प्राणिक स्तर पर बहुत सचेतन होती हैं, अतः इनके लिए कोई वाक्य बोलने तक की जरूरत नहीं होती। अगर विचार... उदाहरण के लिए, अगर तुमने किसी चीज को, किसी बुरी आदत को, किसी भौतिक कमजोरी को ठीक करने के लिए बहुत काम किया है, तुमने काफी काम किया है और काफी काम करने के कारण तुम्हें किसी हद तक सफलता मिली है; अब अगर तुम सिर्फ मानसिक तौर पर यह घोषणा करो कि तुम सफल हो गये हो, तो अगले ही क्षण वह फिर से शुरू हो जायेगी। तो बात ऐसी है... समझे, कहने का तो सवाल ही नहीं, तुम्हें सोचना तक न चाहिये, सिर्फ इतना सोचना कि: "पहले चीज ऐसी थी, और अब ऐसी है। आह, सब बढ़िया है!" बस, खतम। अगले ही क्षण चीज फिर से शुरू।

शरीर के विभिन्न भागों में श्रद्धा

... तुममें से हर एक में वह कौन-सा भाग है जहां तुम्हें भागवत 'कृपा' पर पूरी-पूरी श्रद्धा है? यह भौतिक में हो सकती है, प्राण में हो सकती है, यह चैत्य में हो सकती है, यह किसी एक भाग या दूसरे भाग, एक क्रिया या किसी दूसरी क्रिया में हो सकती है। उदाहरण के लिए, ऐसे लोग होते हैं, जिन्हें भागवत 'कृपा' में श्रद्धा होती है, भागवत 'कृपा' के साथ पूरी तरह से, एक प्रकार के मानसिक सम्बन्ध की अनुभूति होती है; और फिर जैसे ही वे अपनी प्राणिक या भौतिक चेतना में आते हैं तो कुछ भी नहीं रहता। इसके विपरीत, कई ऐसे होते हैं जिन्हें भौतिक रूप में, अपने भौतिक शरीर में... ऐसा हो सकता है कि उनमें मानसिक ज्ञान अधिक न हो, लेकिन अपनी भौतिक चेतना में उन्हें भागवत 'कृपा' पर निरपेक्ष श्रद्धा होती है, उन्हें एक पूर्ण विश्वास होता है, और वे उस विश्वास और श्रद्धा में ही जीते हैं। कइयों में यह केवल उनकी गभीर भावनाओं में ही होता है; और उनके विचार घुमक्कड़ होते हैं। ऐसे लोग भी होते हैं जिनमें प्राणिक श्रद्धा होती है—ऐसे विरले ही होते हैं, लेकिन होते जरूर हैं—जिन्हें काफी प्रबल भाव से भागवत 'कृपा' में प्राणिक श्रद्धा होती है कि सब कुछ हमेशा पूर्ण रूप से अच्छा होगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. १९-२०, १२७-२८

क्या ऐसा नहीं हो सकता कि कभी हमारे अन्दर श्रद्धा की भावना उठे और कभी विचार?

यह एक और ही तथ्य है। इसका यह अर्थ है कि भागवत 'कृपा' पर यह श्रद्धा, यह विश्वास चैत्य में है—वहां, पीछे, इस तरह, हमेशा चैत्य में स्थित है। इसलिए कभी उसका भाव उठता है तो कभी विचार, या कभी-कभी स्वयं शरीर का भी चैत्य के साथ सम्बन्ध होता है, जो बिना जाने भी चैत्य से प्रभावित रहता है; और ऐसे समय इस तरह का विश्वास, इस तरह की श्रद्धा यूं आगे आती है। दोनों शरीर को सहारा देते हैं। यह तब होता है जब चैत्य के साथ तुम क्षणिक सम्पर्क में आते हो। उदाहरण के लिए, जब तुम स्वयं को किसी बड़ी मुसीबत में या किसी भयंकर भौतिक संकट में पाओ और अचानक उस शक्ति को, श्रद्धा की शक्ति को, तुम्हारी सहायता करने वाली भागवत 'कृपा' पर परम विश्वास की शक्ति को अपने अन्दर प्रवेश करता हुआ अनुभव करो। तो इसका यह अर्थ है कि तुम्हारा चैत्य के साथ सचेतन सम्बन्ध है और यह, यह तुम्हारी सहायता के लिए आता है—इसे विशेष कृपा-वृष्टि कहते हैं। ऐसी स्थिति यहां बहुधा होनी चाहिये, क्योंकि प्रत्येक के अन्दर यह सम्बन्ध स्वेच्छापूर्वक, सचेतन रूप से, सारे समय स्थापित रहता है। अतः ऐसी स्थिति यहां बहुधा होनी चाहिये, यहां के लिए यह बिलकुल सामान्य है। इसका यह अर्थ है कि तुम्हारा जो भाग क्रियाशील है या उस क्षण की जो आवश्यकता है उसके अनुसार, यह यहां भी हो सकता है या वहां भी या कहीं और, अचानक तुम्हें यह विश्वास अपने अन्दर से उठता हुआ प्रतीत होता है और यह तुम्हारी रक्षा करता है। तो बात ऐसी है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. १२९

श्रद्धा के पथ पर तीन बाधाएं

जिन लोगों में भगवान् पर श्रद्धा होती है—जिसे वे अटूट श्रद्धा कहते हैं —और जो यह कहते हैं : "स्वयं भगवान् ही सब कुछ कर रहे हैं, वे सब कुछ कर सकते हैं; जो कुछ मुझमें, दूसरों में, सर्वत्र हो रहा है वह सब भगवान् का ही काम है और भगवान् के सिवा अन्य किसी का नहीं", वे यदि इस प्रकार के तर्क के साथ इसका अनुसरण करते हैं तो कुछ समय बाद वे भगवान्

पर अत्यन्त दहलाने वाले कुकर्मों का दोषारोपण करते हैं जो जगत् में होते हैं और 'उन्हें' सचमुच का क्रूर और भयावह दानव बना देते हैं—यदि उनमें विश्वास नहीं होता।

या फिर, उनमें श्रद्धा तो होती है, पर वे अपने-आपसे कहते हैं: "सचमुच मुझे भगवान् पर श्रद्धा तो है, पर यह जगत्, मैं भली-भांति देख सकता हूं कि यह कैसा है! सबसे पहले तो मैं इतना अधिक दुःख भोग रहा हूं, ठीक है न? मैं बहुत दुःखी हूं, अपने सभी पड़ोसियों से कहीं अधिक दुःखी हूं" —कारण, मनुष्य सर्वदा अपने सभी पड़ोसियों से कहीं अधिक दुःखी होता है—"मैं बहुत दुःखी हूं, और सचमुच, जीवन मेरे प्रति कठोर है। परन्तु फिर भगवान् तो भगवान् हैं; वे 'सर्व-कृपालु', 'सर्व-उदार', 'सर्व-सामञ्जस्यमय' हैं, तो यह कैसी बात है कि मैं इतना दीन-दुःखी हूं? वे अवश्य ही शक्तिहीन होंगे; अन्यथा इतने कृपालु होने पर वे मुझे इतना अधिक दुःख-कष्ट कैसे भोगने देते?" यही है दूसरी बाधा।

और तीसरी है: कुछ ऐसे लोग होते हैं जिनमें, हम कह सकते हैं, एक प्रकार की विकुञ्चित और अतिरञ्जित विनयशीलता या विनम्रता होती है और जो अपने-आपसे कहते हैं: "निश्चय ही भगवान् ने मुझे बाहर फेंक दिया है, मैं किसी काम के लायक नहीं हूं, वे मेरे साथ कुछ नहीं कर सकते, मेरे लिए बस एकमात्र कार्य है इस खेल को ही बन्द कर देना, क्योंकि वे मुझे अपने योग्य नहीं समझते!" अतएव, जब तक मनुष्य अपनी श्रद्धा के साथ भगवत्कृपा में समग्र और पूर्ण विश्वास को नहीं जोड़ देता, तब तक कठिनाइयां अवश्य रहेंगी। इस कारण दोनों ही चीजें आवश्यक हैं...।

पथ पर चलने के लिए अनिवार्य वस्तु

कितने ही लोग दिव्य 'संरक्षण' की क्षमता पर, दिव्य 'पथ' की सुनिश्चितता पर सन्देह करते हैं, क्योंकि कुछ लोग पथभ्रष्ट हो जाते हैं। और अपने अंहकारवश लोग अपने-आपसे वह बात नहीं कहते जिसे मैंने अभी इस शाम को तुम्हारे सामने पढ़ा है, उसके स्थान पर वे भय से थरथराते हैं, जो कि सभी बड़ी या छोटी विपत्तियों का कारण है, जो उन सभी लोगों को चेतावनी देती हैं जो पर्याप्त रूप में शुद्ध और सच्चे होने की आवश्यक सावधानी बरते बिना योग के पथ का अनुसरण करते हैं। कोई संरक्षण, कोई कृपा-शक्ति उन लोगों

की रक्षा नहीं कर सकती जो अनिवार्य शुद्धीकरण को अस्वीकार करते हैं। और मैं इतना और जोड़ दूंगी: कि भय एक प्रकार की अपवित्रता है, सबसे बड़ी अपवित्रताओं में से एक है, उनमें से एक जो सीधे उन भगवद्विरोधी शक्तियों से आती हैं जो पृथ्वी पर भागवत कार्य को नष्ट कर देना चाहती हैं; और जो लोग सचमुच योग करना चाहते हैं उनका सबसे पहला कर्तव्य है—अपनी सारी शक्ति, सारी सच्चाई तथा जितनी सहिष्णुता वे धारण कर सकें उस सबके साथ अपनी चेतना में से भय की छाया तक को निकाल फेंकना। मार्ग पर चलने के लिए हमें निर्भीक होना होगा, और कभी उस क्षुद्र, तुच्छ, दुर्बल, निकृष्ट, अपनी ही ओर सिकुड़ जाने के भाव को, जो कि भय है, प्रश्रय नहीं देना होगा।

एक अदम्य साहस, एक पूर्ण निष्ठा और आत्मदान जो इतना सच्चा हो कि मनुष्य न तो हिसाब लगाये न मोल-तोल करे, पाने की भावना से न दे, संरक्षण पाने की भावना से निर्भरशील न हो, ऐसी श्रद्धा न रखे जो प्रमाण मांगती हो—बस, यही चीज पथ पर चलने के लिए अनिवार्य है, और बस यही चीज है जो वास्तव में तुम्हें सभी खतरों में सुरक्षा प्रदान कर सकती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ४७, ३१४-१५

श्रद्धा के लिए अभीप्सा करो

बहुत ही कम लोगों को सहज श्रद्धा का सौभाग्य प्राप्त होता है। लेकिन अगर तुम अपनी अभीप्सा में बहुत सच्चे और निष्कपट हो, तो उसे पा लोगे। अभीप्सा से, यदि वह सच्ची और निरन्तर हो, सब कुछ मिल सकता है। तुम्हारे अन्दर हमेशा श्रद्धा का एक छोटा-सा पुट होता है, चाहे वह उन बातों पर श्रद्धा हो जो तुम्हारे माता-पिता ने बतायी हैं, या पढ़ी हुई किताब में कही गयी बातों पर हो। आखिर तुम्हारी सारी शिक्षा इसी प्रकार की श्रद्धा पर आश्रित है। जिन लोगों ने तुम्हें पढ़ाया था उन्होंने तुम्हें कुछ बातें बतायी थीं; तुम्हारे पास उन्हें जांचने के कोई साधन नहीं थे, क्योंकि तुम बहुत छोटे थे और तुम्हें कोई अनुभव न था। लेकिन उन्होंने जो कहा उस पर तुम्हें श्रद्धा थी और तुम उस श्रद्धा को लेकर चलते रहे। तो हर एक के अन्दर थोड़ी-बहुत श्रद्धा होती है और उसे बढ़ाने के लिए तुम अपनी अभीप्सा का प्रयोग कर सकते हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ४४५-४६

श्रद्धा के लिए शर्तें

सबसे आवश्यक शर्त है बच्चे-जैसा विश्वास रखना, बच्चे का-सा निश्छल विश्वास, कि चीज होकर रहेगी, बच्चा अपने-आपसे इसके बारे में पूछता तक नहीं; जब उसे किसी चीज की जरूरत होती है तो उसे विश्वास होता है कि वह अवश्य आयेगी। तो यह है, इस प्रकार का विश्वास—निश्चय ही यह सबसे जरूरी शर्त है।

अभीप्सा करना अनिवार्य है। लेकिन कुछ लोग बड़े आन्तरिक संघर्ष के साथ अभीप्सा करते हैं, श्रद्धा और श्रद्धा के अभाव में, विश्वास और अविश्वास में, विजय के बारे में निश्चित आशावाद और अपने-आपसे "संकट कब आयेगा" पूछते हुए निराशावाद के बीच संघर्ष के साथ। अगर सत्ता में यह चल रहा हो तो तुम अभीप्सा भले करते रहो, पर तुम्हें कुछ भी नहीं मिलता। और तुम कहते हो: "मैंने अभीप्सा की पर कुछ हाथ न आया।" इसका कारण यह है कि तुम सारे समय विश्वास के अभाव से अपनी अभीप्सा को ढहाते रहे हो। लेकिन अगर सचमुच तुम्हारे अन्दर विश्वास है... अगर बच्चों को अपने ऊपर छोड़ दिया जाये, बड़े उन्हें बिगाड़ें नहीं तो उनके अन्दर कितना बड़ा विश्वास होता है कि सब कुछ ठीक होगा! उदाहरण के लिए, अगर उनके साथ कोई दुर्घटना हो जाये, तो वे यह कभी नहीं सोचते कि यह कोई गम्भीर चीज होने वाली है: उन्हें सहज रूप से यह विश्वास होता है कि जल्दी ही यह किस्सा खत्म हो जायेगा, और यह बड़े सबल रूप से उसे खत्म करने में सहायक होता है।

हां तो, जब तुम दिव्य 'शक्ति' के लिए अभीप्सा करो, जब तुम भगवान् से सहायता मांगो और इस अटल विश्वास के साथ मांगो कि वह आयेगी, कि यह असम्भव है कि वह न आये, तो वह निश्चय ही आयेगी। वह इस प्रकार... हां, यह विश्वास सचमुच आन्तरिक उद्घाटन है। कुछ लोग हमेशा इस स्थिति में रहते हैं। जब कोई चीज ग्रहण करनी होती है, तो वे हमेशा ग्रहण करने के लिए मौजूद रहते हैं। कुछ और लोग ऐसे होते हैं कि जब कुछ पाना हो, कोई शक्ति उतर रही हो, तो वे हमेशा अनुपस्थित रहते हैं; उस समय वे हमेशा बन्द रहते हैं; जब कि वे, जिनमें बच्चों का-सा विश्वास होता है, हमेशा ठीक समय पर मौजूद होते हैं।

और यह आश्चर्य की बात है, है न, कि बाहर से दोनों में कोई फर्क नहीं

होता। उनमें ठीक एक जैसी सद्भावना हो सकती है, एक ही अभीप्सा, भला करने की एक-सी भावना हो सकती है, लेकिन जिन लोगों में यह मुस्कुराता विश्वास होता है, वे अपने-आपसे यह नहीं पूछते कि उन्हें चीज मिलेगी या नहीं, भगवान् उत्तर देंगे या नहीं—यह प्रश्न ही नहीं उठता, यह तो होगा ही...। "मुझे जिस चीज की जरूरत होगी, वह मुझे दे दी जायेगी; अगर मैं प्रार्थना करूं तो उत्तर मिलेगा ही; अगर मैं कठिनाई में हूं और सहायता मांगूं तो सहायता मिलेगी ही—केवल इतना ही नहीं कि वह आयेगी, बल्कि वह सब कुछ व्यवस्थित भी कर लेगी।" अगर सहज, निष्कपट, बिना ननुनच करने वाला विश्वास है, तो वह सबसे अच्छा कार्य करता है, और परिणाम अद्भुत आते हैं। तुम अपने मन की दुविधाओं और सन्देहों के कारण सब कुछ बिगाड़ देते हो। कठिनाई के समय इस प्रकार की धारणाओं से: "ओह, यह तो असम्भव है! मैं यह कभी न कर पाऊंगा। मैं जिस अवस्था में हूं उसे बिलकुल नहीं पसन्द करता, लेकिन अगर यह बिगड़ जाये, अगर मैं ज्यादा-ज्यादा नीचे खिसकता जाऊं, अगर, अगर, अगर, अगर..." और इस प्रकार तुम अपने और जिस शक्ति को ग्रहण करना चाहते हो उसके बीच दीवार खड़ी कर लेते हो। चैत्य पुरुष में यह विश्वास होता है, उसमें यह बिना किसी छाया, बिना किसी बहस के, बिना किसी दुविधा के आश्चर्यजनक रूप से होता है। और जब ऐसा हो, तो ऐसी कोई प्रार्थना नहीं होती जिसका उत्तर न मिले, ऐसी कोई अभीप्सा नहीं होती जो सिद्ध न हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ४५४-५६

श्रद्धा को बनाये रखने के लिए व्यक्तिगत प्रयास आवश्यक है

निश्चय ही अपनी श्रद्धा को बनाये रखने के लिए, इसे अपने अन्दर बढ़ने देने के लिए व्यक्तिगत प्रयास आवश्यक है। बाद में—बहुत बाद में—एक दिन, जब हम अतीत की ओर नजर डालेंगे तो देखेंगे कि जो कुछ हुआ है, यहां तक कि जो हमें सबसे ज्यादा खराब लगा था वह भी, हमें पथ पर बढ़ने के लिए 'भागवत कृपा' थी; और तब हमें भान होता है कि व्यक्तिगत प्रयास भी कृपा ही थी। परन्तु वहां पहुंचने से पहले बहुत दूर तक चलना पड़ता है, बहुत संघर्ष करना पड़ता है, और कभी-कभी तो बहुत सहना भी पड़ता है।

तामसिक निष्क्रियता में बैठे रहना और कहते रहना: "यदि मुझे श्रद्धा

मिलनी है तो मिलेगी ही, भगवान् मुझे देंगे," यह आलस्य और अचेतना की वृत्ति है, लगभग दुर्भावना है। आन्तरिक ज्वाला को प्रज्वलित रखने के लिए तुम्हें उसमें ईंधन डालना होगा; आग पर नजर रखनी होगी, उसमें अपनी सब गलतियों को, जिनसे तुम छुटकारा पाना चाहते हो, जो कुछ तुम्हारी प्रगति को धीमा करता है, जो कुछ तुम्हारे पथ को अंधियारा बनाता है, उस सबकी समिधा बना कर आहुति देनी होगी। यदि तुम आग में ईंधन नहीं डालते तो यह तुम्हारी अचेतनता और तमस् की राख में दबी हुई सुलगती है, और तब तुम्हें अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए कुछ साल ही नहीं, अनेक जन्म और शताब्दियां लग जायेंगी। तुम्हें अपनी श्रद्धा की उसी तरह निगरानी करनी चाहिये जैसे कोई किसी **अत्यधिक** मूल्यवान् वस्तु के जन्म के समय करता है और इसका उन सब चीजों से सावधानी के साथ बचाव करना चाहिये जो इसे हानि पहुंचा सकती हैं। प्रारम्भ के अज्ञान और अन्धकार में श्रद्धा ही 'भागवत शक्ति' का सबसे सीधा आविर्भाव है जो युद्ध करने और विजय प्राप्त करने के लिए आती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. ३८३

अपनी श्रद्धा को कैसे बढ़ाया जाये

मां, श्रद्धा का आधार क्या है?

शायद 'भागवत कृपा'। कुछ व्यक्तियों में यह सहज भाव में मौजूद होती है। कइयों को इसे पाने के लिए बहुत प्रयत्न करना पड़ता है।

श्रद्धा को कैसे बढ़ाया जा सकता है?

मेरा ख्याल है, अभीप्सा द्वारा। कुछ लोगों में सहज भाव से ही श्रद्धा होती है...। देखो, श्रद्धा न हो तो प्रार्थना करना कठिन है, परन्तु यदि व्यक्ति अपने अन्दर श्रद्धा बढ़ाने के लिए, या अभीप्सा करने के लिए, अथवा अपने अन्दर श्रद्धा उत्पन्न करने की अभीप्सा करने के लिए प्रार्थना को साधन बना सके...। इनमें से अधिकांश के लिए उसे प्रयत्न करना पड़ेगा। यदि व्यक्ति के पास कोई वस्तु नहीं है और वह उसे प्राप्त करना चाहता है, तो उसे लम्बे समय तक बहुत, बहुत ही अधिक अथक प्रयत्न करना पड़ेगा, एक सतत अभीप्सा, एक स्थिर संकल्प, हर क्षण पूर्ण सच्चाई अपने अन्दर

लानी ही होगी; और तब यह निश्चित है कि यह सब एक दिन आयेगा—यह एक सेकेण्ड में भी आ सकता है। कुछ लोगों के पास यह होता है, और फिर उनके अन्दर की विरोधी क्रियाएं आकर उन पर आक्रमण कर देती हैं। यदि ऐसे लोगों का संकल्प सच्चा हो, तो वे अपनी श्रद्धा की रक्षा कर सकते हैं, आक्रमणों को धकिया सकते हैं। ऐसे लोग भी होते हैं जो सन्देह को पोषण देते हैं क्योंकि यह एक प्रकार का कलानुराग है—वह, उससे अधिक खतरनाक और कुछ नहीं होता। यह ऐसा है मानों फल में कीड़ा घुसने दिया जाये: वह सारे फल को खाकर ही दम लेगा। दूसरे शब्दों में, जब कोई ऐसी क्रिया तुम्हारे अन्दर प्रवेश करे—सामान्यतया यह पहले मन में आती है—तो पहला काम जो करना चाहिये वह यह कि दृढ़तापूर्वक इसे अस्वीकार कर दो। निश्चय ही यह न होना चाहिये कि व्यक्ति खड़ा देखता रहे, मजा लेता रहे कि क्या हो रहा है; इस तरह का कुतूहल बड़ा भयावह होता है।

बुद्धिजीवियों में श्रद्धा का होना अपेक्षाकृत अधिक कठिन होता है, जो लोग सरल, सच्चे और सीधे-सादे होते हैं, जिनमें बौद्धिक जटिलताएं नहीं होतीं, उन्हें अधिक आसानी से यह प्राप्त हो जाती है। किन्तु मेरे विचार में, यदि किसी बुद्धिजीवी में श्रद्धा हो, तो वह बड़ी शक्तिशाली बन जाती है, इतनी शक्तिशाली कि वह सचमुच चमत्कार कर सकती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. १३७-३९

जब तुम योग-मार्ग पर आओ तो तुम्हें अपने मन के सभी महलों और प्राण की मचानों के ढहाये जाने के लिए तैयार रहना चाहिये। तुम्हें श्रद्धा के सिवाय किसी भी सहारे के बिना हवा में अधर लटकने के लिए तैयार रहना चाहिये। तुम्हें अपने भूतकाल के व्यक्तित्व को और उसकी आसक्तियों को एकदम भूल जाना होगा, उसे अपनी चेतना में से निकाल बाहर करना होगा तथा एक ऐसा नया जन्म लेना होगा जो समस्त बन्धनों से मुक्त हो। तुम क्या थे इसकी चिन्ता न करो, जो बनने की अभीप्सा करते हो केवल उसी का चिन्तन करो; जिस सिद्धि को प्राप्त करना चाहते हो केवल उसी में तन्मय हो जाओ। मृत भूतकाल की ओर से मुंह मोड़ लो और सीधे भविष्य की ओर देखो। तुम्हारा धर्म, देश, परिवार वे ही हैं; वे हैं स्वयं "भगवान्"। —श्रीमां

मेरे बच्चे, सहन करो! और पूरी श्रद्धा रखते हुए परम प्रभु के हृदय में बस एक नवजात शिशु की तरह दुबके रहो। अन्ततः, एक अनन्त परमानन्द में तुम खिल उठोगे...

Mother You Said So: ६.१२.६५

परम प्रभु की शक्ति अनन्त और असीम है—हमारी श्रद्धा ही सीमित और छोटी है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. ९७

श्रद्धा पर चिन्तन-मनन

ये दो चीजें एकदम अनिवार्य हैं : सहनशक्ति और एक ऐसी श्रद्धा जिसे कोई भी चीज डिगा न सके, सम्पूर्ण प्रतीत होने वाला निषेध भी नहीं, चाहे तुम्हें बहुत सहना पड़े, चाहे तुम दयनीय दशा में क्यों न होओ (मेरा मतलब है शारीरिक दृष्टि से), चाहे तुम थक जाओ—फिर भी टिके रहो। पकड़े रखो और टिके रहो—सहनशक्ति होनी चाहिये...।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ११, पृ. १

तुम्हारी श्रद्धा की तीव्रता का यह अर्थ हो सकता है कि भगवान् ने यह पहले से ही निर्धारित कर रखा है कि तुम्हारी श्रद्धा जिसका निर्देश करती है वह अवश्य पूर्ण होगी। अचल श्रद्धा 'भागवत संकल्प' के विद्यमान होने का चिह्न होती है और जो होने वाला है उसका प्रमाण।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ११०

बिना अपवाद के, हर हालत में, चाहे कुछ भी क्यों न हो, स्थिरता और निश्चलता और सौम्य शान्ति और भागवत 'कृपा' में पूर्ण श्रद्धा—अगर तुम्हारे अन्दर यह सब है, तो तुम्हारा कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। अगर तुम अनुभूतियां प्राप्त करना चाहते हो तो इनका होना जरूरी है; क्योंकि इनके बिना अनुभूतियां—यह ठीक नहीं है; लेकिन इनके साथ हों तो बहुत अच्छा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ९१

प्राचीन काल के कुछ पैगम्बरों को ऐसा भविष्य-सूचक अन्तर्दर्शन हुआ था, पर जैसा अक्सर होता आया है, चीजें गड्डमड्ड हो गयीं, और उन्हें भविष्य-सूचक अन्तर्दर्शन के साथ-साथ अतिमानसिक जगत् का अन्तर्दर्शन नहीं हुआ जो मानवता के उस भाग को उठाने आयेगा जो स्वीकार करता है और इस भौतिक जगत् को रूपान्तरित कर देगा। अतः, उन लोगों को जो ऐसी अवस्था में, मानवीय चेतना के इस विकृत भाग में जनमे हैं, आशा बंधाने के लिए उन्होंने श्रद्धा द्वारा मुक्ति की शिक्षा दी : जिन्हें जड़ में भगवान् की यज्ञाहुति

पर श्रद्धा है उनका अपने-आप दूसरे जगत् में केवल श्रद्धा द्वारा उद्धार हो जायेगा—बिना समझे, बिना बुद्धि के। उन्होंने अतिमानसिक जगत् को नहीं देखा, और न ही जड़ में अन्तर्लयन की भगवान् की उदात्त 'आहुति' को देखा है जिसकी पराकाष्ठा होगी स्वयं जड़ में भगवान् की पूर्ण अभिव्यक्ति।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. ३३०

निराशा कभी भी विकास के लिए आवश्यक नहीं होती, यह सदा दुर्बलता और तमस् का चिह्न होती है; यह प्रायः ही एक विरोधी शक्ति की उपस्थिति की द्योतक होती है, यानी एक ऐसी शक्ति की जो जान-बूझकर साधना के विरोध में काम करती है। इसलिए जीवन की परिस्थितियां चाहे जैसी हों, तुम्हें सदैव निराशा से दूर रहने की सावधानी बरतनी चाहिये और फिर दुःखी, उदास और हताश रहने की यह आदत वस्तुतः परिस्थितियों पर निर्भर नहीं होती, बल्कि यह प्रकृति में विश्वास न होने से उत्पन्न होती है। जिस व्यक्ति में विश्वास होता है, चाहे वह केवल अपने ऊपर ही क्यों न हो, वह सब कठिनाइयों का, सब परिस्थितियों का, अत्यधिक विपरीत परिस्थितियों का भी, बिना निरुत्साहित या निराश हुए, सामना कर सकता है। वह अन्त तक मर्दानगी के साथ संघर्ष करता रहता है। जिन व्यक्तियों की प्रकृति में विश्वास का अभाव होता है उन्हीं में सहनशीलता और साहस का भी अभाव होता है।

प्रकृति का ऐसा कोई विधान नहीं है जिसका अतिक्रमण न किया जा सके या जिसे बदला न जा सके, केवल हमारे अन्दर यह विश्वास होना चाहिये कि भगवान् ही सब पर शासन करते हैं और यदि, हम अपने सहस्रों वर्षों के पुराने अभ्यासों के बन्दीगृह से निकलना और अपने-आपको 'उनकी' इच्छा पर पूर्ण रूप से छोड़ना सीख सकें तो हमारा 'उनके' साथ सीधा सम्पर्क स्थापित हो सकता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ६३, २८०

जिसे सामान्यतः मनुष्य अन्ध-विश्वास कहते हैं वह वास्तव में वह वस्तु होती है जिसे भागवत कृपा कभी-कभी उन लोगों को प्रदान करती है जिनकी बुद्धि इतनी विकसित नहीं हुई कि वे सच्चे ज्ञान को प्राप्त कर सकें। अतएव,

अन्ध-विश्वास बहुत सम्माननीय हो सकता है, यद्यपि यह बात ठीक है कि जिस व्यक्ति के पास सच्चा ज्ञान है वह इससे कहीं उच्च अवस्था में है।

जिन लोगों का हृदय शुद्ध और श्रद्धा अडोल है, उन लोगों के लिए अत्यधिक प्रत्यक्ष पराजय वह गुप्त मार्ग मात्र है जो अन्तिम विजय की ओर ले जाता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ३३४, ३६०

तुम्हारी श्रद्धा तुम्हें 'परम पुरुष' के रक्षण में रख देती है और वे सर्वशक्तिमान् हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. २८३

भविष्य उनके लिए है जिनमें एक वीर की अन्तरात्मा है। हमारी श्रद्धा जितनी अधिक अडिग और सच्ची होगी, आने वाली सहायता भी उतनी ही सशक्त और प्रभावकारी होगी।

भगवान् तुम्हारी अभीप्सा के अनुसार तुम्हारे साथ हैं। स्वभावतः, इसका यह अर्थ नहीं है कि वे तुम्हारी बाह्य प्रकृति की सनकों के आगे झुकते हैं,—यहां मैं तुम्हारी सत्ता के सत्य की बात कह रही हूं। और फिर भी, कभी-कभी भगवान् अपने-आपको तुम्हारी बाहरी अभीप्सा के अनुसार गढ़ते हैं, और अगर तुम, भक्तों की तरह, बारी-बारी से मिलन और बिछोह में, आनन्द की पुलक और निराशा में रहते हो, तो भगवान् भी तुमसे, तुम्हारी मान्यता के अनुसार, बिछुड़ेंगे और मिलेंगे। इस भांति मनोभाव, बाहरी मनोभाव भी, बहुत महत्त्वपूर्ण है। लोग यह नहीं जानते कि श्रद्धा कितनी महत्त्वपूर्ण है, कितना बड़ा चमत्कार है, चमत्कारों को जन्म देने वाली है। अगर तुम यह आशा करते हो कि हर क्षण तुम्हें ऊपर उठाया जाये और भगवान् की ओर खींचा जाये, तो वे तुम्हें उठाने आयेंगे और वे बहुत निकट, निकटतर, सदैव निकट होंगे।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. १७, ७९

हर क्षण सारा अप्रत्याशित, अनपेक्षित, अज्ञात हमारे सामने रहता है—और हमारे साथ जो कुछ होता है वह अधिकतर हमारी श्रद्धा की पवित्रता और

तीव्रता पर निर्भर करता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. ८७

अपने आप में 'भागवत कृपा' जो है उसके अनुपात में हमारी श्रद्धा 'भागवत कृपा' की शक्तिमत्ता के कभी बराबर नहीं होती।

जुलाई १९५६

अन्तिम विश्लेषण में, 'भागवत कृपा' में पूर्ण श्रद्धा और विश्वास ही 'परम प्रज्ञा' है। १५ अगस्त १९५६

इस प्रत्यक्ष अस्तव्यस्तता में से एक नयी और अधिक अच्छी व्यवस्था रूप ले रही है। लेकिन उसे देखने के लिए तुम्हारे अन्दर 'भागवत कृपा' में श्रद्धा होनी चाहिये। हिम्मत बनाये रहो।

जब सब कुछ खोया हुआ प्रतीत होता है तभी सब कुछ बचाया जा सकता है। जब तुम अपनी निजी शक्तियों पर विश्वास खो बैठते हो, तब तुम्हें भागवत कृपा पर विश्वास रखना चाहिये।

केवल 'भागवत कृपा' में अविचल विश्वास और श्रद्धा के साथ पूरी तरह से शान्त और निश्चल बने रहने से ही तुम परिस्थितियों को यथासम्भव अच्छे-से-अच्छा पा सकते हो। उन लोगों के लिए **हमेशा अच्छे-से-अच्छा होता है** जो 'भगवान्' और केवल 'भगवान्' पर ही पूरा भरोसा रखते हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. ९७-९८, १०३

कभी मत बुड़बुड़ाओ। जब तुम बुड़बुड़ाते हो तो तुम्हारे अन्दर सब तरह की शक्तियां घुस जाती हैं और तुम्हें नीचे खींच लेती हैं। मुस्कुराते रहो। मैं हमेशा मज़ाक करती हुई दीखती हूं पर यह केवल मज़ाक नहीं है। यह चैत्य से उत्पन्न विश्वास है। मुस्कान इस श्रद्धा को प्रकट करती है कि कोई चीज भगवान् के विरुद्ध खड़ी नहीं रह सकती और अन्त में हर चीज ठीक निकलेगी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. २४५

श्रीमां द्वारा सुनायी गयी कहानी : छेदवाला सिक्का

पुराने जमाने में कुछ लोग सोचते थे कि एक कटे किनारों वाला सिक्का... वह ऐसा जमाना था जब सिक्कों में छेद नहीं किये जाते थे... अब तो कटे किनारे या छेदवाले सिक्के होते हैं, है न, कुछ देशों में छेदवाले सिक्के चलते हैं, लेकिन उस जमाने में उनमें छेद नहीं किये जाते थे, और फिर भी कभी-कभी किसी सिक्के में छेद होते थे। और तब सचमुच इस तरह का अन्धविश्वास था, कि जब भी किसी को छेदवाला सिक्का मिला तो वह सौभाग्य लाया। तुम जो करना चाहते थे उसमें तुम्हारे लिए वह सौभाग्य या सफलता लाया।

किसी दफ्तर में एक कर्मचारी था। वह काफी गरीब था और बहुत सफल नहीं था। एक दिन उसे छेदवाला सिक्का मिल गया। उसने उसे अपनी जेब में डाल लिया और अपने-आपसे कहा : "अब मैं समृद्ध हो जाऊंगा!" और वह आशा, साहस और ऊर्जा से भर गया, क्योंकि वह जानता था : "अब चूंकि मेरे पास सिक्का है, इसलिए मेरा सफल होना निश्चित है!" और, वास्तव में, वह समृद्ध होता गया, अधिकाधिक समृद्ध। वह अधिकाधिक पैसा कमाता जा रहा था, उसका पद ऊंचा होता जा रहा था और लोग कहते थे : "कितना योग्य मनुष्य है! कितनी अच्छी तरह काम करता है! यह सभी समस्याओं को हल कर देता है!" सचमुच, वह विलक्षण बन गया था, और रोज सुबह कोट पहनते समय वह उसे छूता था—इस तरह—यह निश्चित करने के लिए कि उसका सिक्का जेब में है तो...। वह छूता था, वह महसूस करता था कि सिक्का है, और उसे विश्वास रहता था। और फिर, एक दिन, उसे जरा कुतूहल हुआ और उसने कहा : "मैं अपने सिक्के को देखूंगा!"—बरसों बाद...। वह अपनी पत्नी के साथ बैठ कर नाश्ता कर रहा था, वह बोला : "मैं अपना सिक्का देखूं-गा!" उसकी पत्नी ने कहा : "तुम अपना सिक्का क्यों देखना चाहते हो? कोई जरूरत नहीं।"—"हां, हां, मुझे अपना सिक्का देखने दो।" उसने वह थैला निकाला जिसमें सिक्का रखा था और देखता क्या है, उसमें सिक्का तो है पर उसमें छेद नहीं है!

उसने कहा : "ओह, यह मेरा सिक्का नहीं है! यह क्या है? किसने मेरा

सिक्का बदल दिया?" तब उसकी पत्नी ने कहा : "देखो, एक दिन तुम्हारे कोट पर धूल थी... मैंने उसे खिड़की के बाहर झाड़ा और सिक्का गिर गया। मैं भूल गयी थी कि उसमें सिक्का रखा था। मैं उसे ढूंढ़ने के लिए दौड़ी लेकिन वह मिला नहीं। किसी ने उसे उठा लिया था। तब मैंने सोचा कि तुम बहुत दुःखी होओगे और मैंने उसमें दूसरा सिक्का रख दिया।" *(हंसी)* निस्सन्देह, उसे विश्वास था कि उसका सिक्का वहां है और इतना काफी था।

श्रद्धा ही, विश्वास ही है जो काम करता है, है न... छेदवाला सिक्का तुम्हें कुछ नहीं देता। तुम आजमा सकते हो। जब विश्वास हो...

तो!... अब बस।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. २६७-६८

श्रीमां द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक नाम :

श्रद्धा

अग्निशिखा सदृश तुम प्रज्वलित होकर विजय प्राप्त करती हो।

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

जुलाई

१. शारीरिक चेतना की अज्ञानभरी शक्तियों के अन्धकार में भी तुम्हारे और सबके लिए एक ही चीज की आवश्यकता है और वह है अपनी आत्मा के प्रति और भागवत पुकार के स्मरण के प्रति हठपूर्वक निष्ठावान् बने रहो।

२. सभी मनुष्य कामनाओं से भरे होते हैं, उनका जीवन कामनाओं से ही निर्मित होता है। मनुष्य के संकल्प के पीछे भी कामना ही होती है, उसकी आवश्यकताएं कामना हैं। वह सतत जागरूकता और निरन्तर परिहार द्वारा ही इन कामनाओं के चंगुल से मुक्त हो सकता है।

३. हमारे भीतर बैठे दिव्य पथप्रदर्शक हमारे विरोध करने से चिढ़ते नहीं, हमारी श्रद्धा के अभाव से हताश नहीं होते या हमारी कमजोरी से पीछे नहीं हटते; उनमें मां की ममता का सागर है और एक शिक्षक के धैर्य का आगार। —श्रीअरविन्द

४. अपनी अस्वस्थता के लिए भागवत शान्ति को नीचे उतारने के प्रयास को मत भूलो—क्योंकि भगवान् की शान्ति का विरोध कोई बीमारी नहीं कर सकती। केवल स्मरण और प्रयास भी तुम्हें कुछ राहत देंगे।

५. भगवान् सुनते हैं और आशीर्वाद देते हैं। 'उनके प्रेम' की 'करुणा' चिरन्तन रूप से हमारे साथ है। हमारी सच्चाई है 'उनकी विजय'।

६. संसार में प्रत्येक को उतना ही प्यार मिलता है जितना उसके अन्दर है। यह तो केवल भगवान् का प्रेम है जो स्थायी और शाश्वत है।

७. तथाकथित मानवीय बुद्धि की समस्त गुत्थियों के ऊपर स्थित है भागवत कृपा की ज्योतिर्मयी सरलता, जो कार्य करने को तत्पर है, यदि हम उसे करने दें।

८. भौतिक चीजें हर्ष या दुःख का कारण नहीं होनी चाहियें। अपनी आत्मा के साथ युक्त होना ही चिर प्रसन्न रहने का एकमात्र तरीका है; बाकी सबका कोई विशेष महत्त्व नहीं।

९. अनुशासन के बिना कोई उचित काम सम्भव नहीं है।

अनुशासन के बिना कोई उचित जीवन सम्भव नहीं है।
और सबसे बढ़ कर यह कि अनुशासन के बिना साधना सम्भव नहीं है।

१०. व्यक्तिगत संवेदनशीलता, दुर्भावना और गलतफहमी को कभी काम में दखल न देना चाहिये। काम भगवान् की सेवा के रूप में किया जाना चाहिये, मानव-हित के लिए नहीं।

११. भगवान् के प्रति तुम्हारी सेवा अति सावधानी के साथ ईमानदारी-भरी, निष्काम और निस्स्वार्थपूर्ण होनी चाहिये, अन्यथा उसका कोई मूल्य नहीं होता।

१२. प्रसन्न रहो और भरोसा रखो। इसमें सन्देह नहीं कि संशय और कामना अपने दल-बल के साथ वहां हैं पर भगवान् भी वहां तुम्हारे अन्दर उपस्थित हैं। अपनी आंखें खोले रखो और निरन्तर देखते रहो जब तक परदा फट न जाये और तुम भगवान् या भगवती मां को देख न लो! —श्रीअरविन्द

१३. भगवान् अपने को उनको देते हैं जो बिना कुछ बचाये, सर्वांगीण रूप से स्वयं को भगवान् को अर्पित करते हैं। उनके लिए है शान्ति, ज्योति, शक्ति, हर्ष, मुक्ति, विशालता, ज्ञान के उत्तुंग शिखर और आनन्द के पारावार।

१४. भगवान् सदा, सर्वत्र और सतत विजयशील हैं, पर हां, अपने ढंग से, मानवीय धारणाओं के अनुसार नहीं। वे सदा अपने को देते रहते हैं लेकिन मनुष्य इतने स्थूल और जड़ हैं कि उसे अनुभव नहीं करते।

१५. हमेशा से ज्यादा, भगवान् की शरण लो और सारी सामान्य मानव चेतना की कुटिलता से अलग-थलग रहो।
उस प्रेम में और उसके साथ जिसे कोई दाग नहीं लगा सकता।

१६. भीतर रहो, बाह्य घटनाओं से विचलित मत होओ।

१७. मिथ्यात्व से ऊपर उठ जाओ, अपनी आत्मा की निर्मल ज्योति में वास करो और तुम भगवान् के समीप, बहुत समीप होओगे।

१८. ... परम सत्य की दृष्टि में कोई बड़ा या छोटा नहीं है।
केवल भगवान् का अस्तित्व है और केवल वही सच्चा है जो उसे सचेतन रूप से अभिव्यक्त करता है।

१९. शान्त रहो, बहुत अधिक शान्त और यथासम्भव अधिक-से-अधिक केवल लक्ष्य और परमेश्वर का चिन्तन करो। वे ही हैं शान्तिदाता।
अपने सम्पूर्ण प्यार के साथ।

२०. निम्न प्रकृति और उच्च प्रकृति का—अहं और आत्मा के बीच का —यह संघर्ष विश्वव्यापी है। एक ही रास्ता है—धीरज रखना। मदद के लिए और रक्षा के लिए भगवान् सदा विद्यमान हैं।
अपने सम्पूर्ण प्यार के साथ।

२१. दुविधा से बाहर निकलने का **एक ही** तरीका है (वह दुविधा जो मिली-जुली और परस्पर टकराती कामनाओं का परिणाम है) और वह तरीका है स्थिरता, शान्ति, भागवत कृपा में विश्वास और मन में नीरवता का जिससे ऊर्ध्व में प्रतीक्षा करती उचित प्रेरणा नीरवता और शान्ति में अभिव्यक्त हो सके।

२२. धरती का जीवन कम या अधिक सचेतन, कम या अधिक अचेतन, कम या अधिक सच्चा, कम या अधिक मिथ्या है।
हमें अभीप्सा करनी चाहिये सचेतन बनने और सच्चे बनने की।

२३. सभी कठिनाइयों का सामना करने के लिए मैं तुम्हारे साथ रहूंगी — -इस विषय में तुम निश्चिन्त रह सकती हो।
अपने सम्पूर्ण प्यार के साथ।

२४. थकान आन्तरिक तनाव और बेचैनी से आती है, शारीरिक काम करने से नहीं। यदि हम अपने मन और प्राण में शान्त रह सकें तो हम कभी नहीं थकते।

२५. जब तक बाहरी परिस्थितियां तुम्हें उद्विग्न करती रहेंगी तब तक तुम भागवत शान्ति और हर्ष को बनाये नहीं रख सकोगी। उन्हें स्थायी रूप में पाने के लिए तुम्हें अपनी आन्तरिक चेतना में, बहुत गहराई में रहना होगा और केवल अपनी अभीप्सा और भागवत उपस्थिति के बारे में ही सोचना होगा।

२६. सब कठिनाइयों से उबरने का एक ही रास्ता है, लेकिन वह है बहुत सुनिश्चित। अपनी **श्रद्धा** को अविकल और जीवन्त बनाये रखो, एक चमकती लौ की तरह।

२७. मेरी बहुत प्यारी नन्हीं बच्ची,

दुविधा में मत रहो। यह सब तुम्हें यह सिखाने के लिए है कि तितली की तरह बनो, भविष्य की चिन्ता न करो, पूरे भरोसे और विश्वास के साथ सब कुछ उस परम पर छोड़ दो।

अपने सम्पूर्ण प्यार के साथ।

२८. भगवान् से कभी यह न कहो, "लक्ष्य तक पहुंचने के लिए मुझे फलां-फलां चीज चाहिये, क्योंकि वे तुमसे ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं कि तुम्हारी प्रगति के लिए क्या अच्छा है और वे तुम्हें बिलकुल वही चीज देते हैं।

२९. हृदय में निरन्तर भगवन्नाम का स्मरण करो और सब कुछ ठीक हो जायेगा। प्यार के साथ।

३०. अपने मन में निरन्तर **अन्तिम विजय** में विश्वास बनाये रखो और रास्ता काफी छोटा हो जायेगा।

भगवान् के लिए तो अन्तिम विजय पहले से ही विद्यमान है, वे बस प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब धरती इसके प्रति जागरूक हो।

अपने समस्त प्यार के साथ।

३१. यदि हम मुसीबतों को हमें उन्नति करवाने के सर्वाधिक प्रभावकारी तरीके के रूप में देखें तो उनकी कटुता खतम हो जाती है और उन्हें सहना आसान हो जाता है।

और जब हम जान जायें कि सब परिस्थितियों में भगवान् को कैसे बुलाया जाये, कैसे जीवन की सब घटनाओं में उन्हें भागीदार बनाया जाये तो सकल जीवन 'आनन्दमय' बन जाता है, क्योंकि वे अपने आनन्द से सब कुछ को ढक देते हैं।

प्यार और आशीर्वाद के साथ।

जब मैं बच्ची थी, सब भूल जाया करती थी; तब मुझसे कहा जाता था, जिन्दगी में आगे बढ़ने के लिए "सीखने की कोशिश करो।"

अब, जब मैं याद रखने के काबिल हूं तो मुझसे कहा जाता है, जिन्दगी में आगे बढ़ने के लिए "अतीत को भूलना सीखो।"!!

आदमी

जेठ की तचती दोपहर। भयानक लू चल रही थी। बाजार सुनसान था। बाजार के बीचोबीच कपड़े की बड़ी दूकान पर सेठ मंगतूराम गद्दी पर बैठे ऊंघ रहे थे। भरी दोपहरी में ग्राहक कोई था नहीं, और करते भी क्या? उसी समय एक गरीब किसान बाजार से निकला नंगे पांव, फटी धोती, गन्दी बनियान, सिर पर अंगोछा। उस किसान का गर्मी से बुरा हाल था। भयानक प्यासा था वह। पसीने से तर, उसका हलक सूख रहा था। प्यासे किसान ने सेठजी की दूकान के एक कोने में रखा हुआ पानी का घड़ा देखा। घड़े के पास डुबकना और ग्लास टंगे हुए थे।

पानी दिख जाये तो प्यास और बढ़ जाती है। किसान दूकान के सामने आकर ठिठका और बड़े संकोच के साथ कहा, "सेठजी पाय लागी।"

उसका स्वर सुन कर सेठजी चौंके। आंखें खुलीं, सिर उठा, उन्हें लगा कि ग्राहक आया है। मुंह में मिश्री घोलते हुए बोले, "कहो भाई, क्या चाहिये।" प्यासा किसान बोला, "सेठजी बड़ी प्यास लगी है। थोड़ा पानी पिला दीजिये।" सेठजी के मुंह की मिश्री गायब हो गयी। उसकी जगह करेला आ गया। झुंझला कर बोले, "बाहर पटरे पर बैठ जाओ, अभी हमारा आदमी आयेगा वो पानी देगा।" इतना कह कर कूलर की हवा में सेठजी ऊंघने लगे।

प्यासा किसान दूकान के बाहर पटरे पर बैठ गया। लू के थपेड़े उसका पसीना सुखा रहे थे।

दस मिनट बीत गये। किसान फिर बोला, "सेठजी बहुत प्यास लगी है, पानी पिला दीजिये।" सेठजी झुंझलाये, "कहा न, आदमी आ रहा है, वह पिलायेगा।" किसान सिर झुका कर बैठ गया। दस मिनट और बीत गये। प्यास के कारण उसके प्राण कण्ठ में आ रहे थे। "सेठजी....।" किसान इतना ही बोल पाया कि सेठजी गुर्राये, "कहा न आदमी आयेगा तब वह पानी पिलायेगा।"

प्यासा किसान हाथ जोड़ कर बोला, "सेठजी थोड़ी देर के लिए आप ही 'आदमी' बन जाइये।"

'कत्यूरी मानसरोवर' से साभार —प्रो. रमेश तिवारी 'विराम'

जोहान्स होलेन्बर्ग

जोहान्स होलेन्बर्ग (Johannes Hohlenberg) डेनमार्क के अजाने लेखक, चित्रकार इत्यादि थे। इस बात में अतिशयोक्ति न होगी कि पिछली शताब्दी के आरम्भ में ये पहले व्यक्ति थे जिन्होंने यूरोप में पूर्णयोग पर एक किताब लिखी। वे श्रीअरविन्द तथा श्रीमां से बहुत प्रभावित थे। आज डेनमार्क में उनकी चर्चा नहीं होती, लेकिन अनुसूया कुमार, जिन्होंने जोहान्स के जीवन की कई बातें दुनिया के सामने उजागर कीं, उन्हीं का कुछ लेखा-जोखा हम यहां देने की कोशिश कर रहे हैं।

भारत में जन्मी अनुसूया कुमार अमरीका में बस गयी थीं और वहीं अंग्रेज़ी साहित्य की शोध-छात्रा थीं। सारी कहानी तब शुरू हुई जब अपना शोधप्रबन्ध लिखने के दौरान उन्हें निमोनिया ने धर दबोचा। बहरहाल, तेज बुखार के बावजूद (चूंकि अपना कार्य प्रस्तुत करने की अन्तिम तारीख करीब थी) वे अपने लेखन में डूबी रहीं। वे पॉल स्कॉट की The Raj Quartet पर शोधकार्य कर रही थीं। अनुसूया लिखती हैं, "मैं मार्क्सवादी नजरिये से सारी चीज को देख रही थी। उस रोज, तेज बुखार की मदहोशी में मेरे सामने अचानक वह किताब अपने पूरे आध्यात्मिक रहस्य के साथ खुल गयी और मेरे सामने गुह्यवाद मानों आग के प्रकाशमान् घेरे की तरह गोल-गोल नाचने लगा।"

निमोनिया के रहते-रहते उन्हें अब गुह्यवाद और अध्यात्मवाद ने भी अपने शिकंजे में कस लिया और भारतीय आध्यात्मिकता में अधिक पैठने की कोशिश में वे वाराणसी में आकर संस्कृत का अध्ययन करने लगीं, लेकिन शायद भारत की आबोहवा उनके अनुकूल न पड़ी, वे दोबारा गम्भीर रूप से बीमार पड़ गयीं। तब डेनमार्क में ही रह कर उन्होंने संस्कृत का अपना अध्ययन जारी रखने का निश्चय किया। लेकिन चूंकि उनका कार्यक्षेत्र साहित्यिक था इसलिए सारा-सारा दिन वे संस्कृत-साहित्य तथा व्याकरण का अध्ययन न कर सकती थीं, अतः डेनमार्क के किताब-घरों में वे आध्यात्मिक विषयक पुस्तकों की छान-बीन में भी साथ ही साथ लगी रहतीं। यहीं पुरानी किताबें बेचने वाली एक दूकान में जोहान्स होलेन्बर्ग की *'Yoga and its meaning for Europe'*—'यूरोप में योग और उसका अर्थ'—नामक किताब उनके हाथ लगी।

अब जोहान्स के बारे में चन्द शब्द :

होलेन्बर्ग का जन्म १८८१ में और मृत्यु १९६० में हुई। वे 'रनेसांस' युग के थे और थे दार्शनिक, चित्रकार, पत्रकार, संगीतकार, लेखक, राजनैतिक अर्थशास्त्री और प्रकाशक—इतने गुणों के धनी जोहान्स ने डेनमार्क में भी प्रसिद्धि नहीं पायी, क्योंकि वे सीधे-सादे इन्सान लोकप्रियता के घेरे में आने से हमेशा कतराते थे। अगर उनका नाम लोग-बाग जानते हैं तो बस योग पर लिखी उनकी दो किताबों के जरिये।

बहरहाल, श्रीअरविन्द तथा श्रीमां के ग्रन्थों को पढ़ने वाले सतर्क पाठक यह जानते हैं कि उनकी कृतियों में यहां-वहां महोदय जोहान्स का उल्लेख मिलता है। उदाहरण के लिए, श्रीमां १९०० की शुरुआत में अपने तीन दोस्तों के साथ पहाड़ों पर की सैर का जब जिक्र करती हैं तो उनमें से एक होलेन्बर्ग थे। उन्होंने श्रीमां से शरीर से बाहर निकलने की कला के बारे में भी पूछा था और मां बताती हैं कि जब वे पहली बार उसमें सफल हुए तो उस अनुभूति से वे आतंकित हो उठे थे।

होलेन्बर्ग १९१५ में पॉण्डिचेरी भी आये और यहां कई दिनों तक रहे। वे श्रीअरविन्द से भी मिले, उन्होंने उनका एक फ़ोटोग्राफ़ लेकर उसे आंका (उनके द्वारा किया श्रीअरविन्द का वह तैल चित्र आज भी आश्रम के मुख्य भवन में 'प्रॉस्पेरिटी' के कमरे में टंगा हुआ है।) श्रीअरविन्द ने एक बार कहा था कि रोजाना शाम के ध्यान अथवा बातचीत के बाद वह प्रायः मुझसे कहा करता था, "चलिये, अब हम उन 'अनिर्वचनीय' के बारे में बातें करें!"

और श्रीअरविन्द उनकी बात मान लिया करते थे!

अनुसूया ने होलेन्बर्ग के बारे में काफी छान-बीन कर इधर-उधर की बातों का पता लगाया। दूसरी बातों के साथ-साथ इस बात की भी पुष्टि होती है कि श्रीमां से भी वे साधना के गुर सीख रहे थे। माताजी ने उनके बारे में कहा था कि वह एक अच्छा पात्र है और श्रीअरविन्द के विचारों को अपने देश में फैलाने का काम वह सचेतन रूप से कर रहा है। वास्तव में १९१६ में छपी उनकी पुस्तक—*Yoga and its meaning for Europe*—-डेनमार्क, स्वीडन और जर्मनवासियों के लिए योग की पहली पुस्तक थी। सचमुच, 'पूर्णयोग' के बारे में तो सारी दुनिया में वह पहली *पुस्तक* थी। (श्रीअरविन्द 'आर्य' पत्रिका में अपने लेख नियमित रूप से लिख रहे थे, लेकिन वे तब तक पुस्तक के रूप में नहीं निकले थे।)

जोहान्स होलेन्बर्ग द्वारा बनायी श्रीअरविन्द की 'पेंटिंग'

बहरहाल, होलेन्बर्ग तथा श्रीअरविन्द और श्रीमां के साथ उनके सम्बन्ध के बारे में सब कुछ जानना आसान काम नहीं था, क्योंकि... अनुसूया लिखती हैं, "वे बहुत ही संकोची व्यक्ति थे, उनकी मृत्यु के बाद उनकी विधवा एली ही उनके सारे कागद-पत्तर की स्वामिनी थीं और उन्होंने उन सभी कागज़ात इत्यादि को भस्म कर दिया जो उनके हिसाब से उनकी व्यक्तिगत चिट्ठियां, उनकी डायरियां इत्यादि थीं। उन्होंने बस उनके उन्हीं लेखों की कतरनें वगैरह रखीं जो छप चुके थे।

अनुसूया ने जब यह सुना कि उनकी विधवा ने उनके बचे हुए सभी कागजात कोपेनहेगन की 'रॉयल लायब्रेरी' में दे दिये थे तो वे वहां पहुंचीं। उन्होंने देखा कि उनकी सामग्री के २५ बड़े-बड़े डिब्बे थे... बहरहाल उन्होंने सभी बक्सों को छानने की ठानी, हालांकि वे जानती थीं कि एली ने उनके सभी व्यक्तिगत कागजात नष्ट कर दिये थे। कई दिनों के परिश्रम के बाद आखिर उनके हाथ कुछ तो लगा! अनुसूया लिखती हैं, "अचानक मेरी नजर बंधे हुए कुछ कागजों पर पड़ी जिनमें होलेन्बर्ग ने १९०६ से १९११ के बीच के अपने पैरिस के काल का जिक्र किया था। मैं खुशी से उछल पड़ी जब दूसरे ही पन्ने पर मैंने पढ़ा कि वे पैरिस के दूसरे चित्रकारों के साथ 'मीरा' (श्रीमां) से भी मिले। बाद के कुछ पन्नों पर उन्होंने लिखा कि मीरा के साथ उनके गभीर दार्शनिक वार्तालाप भी हुआ करते थे और उनके स्वप्नों में भी प्रकट होकर वे उनकी बहुत सहायता किया करती थीं।"

होलेन्बर्ग कला के गढ़ पैरिस में चित्रकारी सीखने आये थे, साथ ही उन्हें गुह्यवाद में भी बहुत रस था, श्रीमां ने उन्हें 'तेओं' के पास जाने का सुझाव दिया (श्रीमां तेमसेम में उनके यहां ठहर कर कुछ दिन पहले ही आयी थीं) और इसके लिए उन्हें हिब्रू सीखने की भी सलाह दी। उन्होंने श्रीमां के साथ ही 'कबाला' सीखनी शुरू की थी। बाद में श्रीमां ने एक बार उल्लेख किया था, "अपने पैरिस-काल में जोहान्स रोज शाम को मेरे यहां आया करता था और दार्शनिक तथा गुह्य विषयों पर हम बातें किया करते थे।"

श्रीमां ने ३ मार्च १९५४ की अपनी शाम की कक्षा में जोहान्स का उल्लेख करते हुए कहा था कि वह शरीर से बाहर निकलने की अनुभूति के लिए बहुत ही आग्रह कर रहा था। अन्ततः मैंने अपनी उपस्थिति में

उसे वह सिखलाया। यद्यपि वह बहादुर इन्सान था लेकिन उस अनुभूति से इतना आतंकित हो उठा कि चीज बहुत गम्भीर रूप ले सकती थी, क्योंकि अगर वह "रुपहला धागा", जो भौतिक को सूक्ष्म से बांधे रखता है, कहीं टूट जाता तो अनर्थ हो जाता।

प्रश्न यह उठता है कि होलेन्बर्ग पॉण्डिचेरी आये कैसे? कैसे उनकी मुलाकात श्रीअरविन्द से हुई?

जब पॉल रिशार १९१० में पॉण्डिचेरी आये तो श्रीअरविन्द से मिले और जब वे फ़्रांस वापिस लौट गये तब भी श्रीअरविन्द के साथ उनका पत्राचार चलता रहा।

इधर होलेन्बर्ग ईजिप्ट से १९१२ में लौट आये और वे अपने मित्र रिशार के साथ पॉण्डिचेरी आने का कार्यक्रम बना रहे थे। रिशार १९१४ में पॉण्डिचेरी आ रहे थे और उन्होंने होलेन्बर्ग को भी साथ चलने का निमन्त्रण दिया। वे प्रफुल्लित हो उठे।

श्रीअरविन्द के साथ प्रथम भेंट से वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने लिखा, "मैंने पॉण्डिचेरी में ही बस जाने का अपना मन बना लिया है।" लेकिन 'विधना के कछु और'... उस समय पॉण्डिचेरी नगर फ़्रेंच सरकार के अधीन था और इधर अंग्रेज़ सरकार श्रीअरविन्द पर पूरी निगरानी रखे हुए थी। कहा जाता है कि एक दिन होलेन्बर्ग सिगार खरीदने के लिए निकले और उन्होंने वह सीमारेखा लांघ दी। बस, वे पकड़ लिये गये, श्रीअरविन्द के साथ उनका सम्बन्ध है, इस बात ने अंग्रेज़ों के कान खड़े कर दिये और उन्हें जर्मन जासूस कह कर देशनिकाला दे दिया गया। पानी के जहाज से पहले उन्हें कोलम्बो भेजा गया, फिर पैरिस, उसके बाद लन्दन। उन पर नजर रखी गयी और वे अपने देश डेनमार्क १९१६ में ही पहुंच पाये!

अनुसूया लिखती हैं, "कोपेनहेगन के पुस्तकालय के २३ डिब्बों को मैंने खंगाल लिया, और कुछ न मिला... नहीं मिला क्या? २४ वां डिब्बा मेरे इन्ताज़ार में था! उसमें मिली मुझे एक कॉपी जिसमें जोहान्स ने अपने पॉण्डिचेरी-काल की यादों, श्रीअरविन्द के साथ हुए वार्तालापों को दर्ज किया था! मेरे हाथ कारूं का खजाना लग गया!!"

वास्तव में डेनमार्क पहुंच कर होलेन्बर्ग ने कई पत्रिकाओं के लिए श्रीअरविन्द के योग के बारे में लेख लिखे थे। उनकी यह कॉपी भस्म

होने से शायद इसलिए बच गयी क्योंकि उनकी पत्नी ने सोचा होगा कि ये उनके छपे हुए लेखों की पाण्डुलिपियां हैं...। सचमुच अपनी किताब में भी उन्होंने श्रीअरविन्द के योग की ही पद्धति समझायी थी जिसकी घोषणा उन्होंने १९४८ में अपनी एक चिट्ठी में की थी, "मैंने योग पर एक किताब लिखी है जो श्रीअरविन्द को समर्पित है क्योंकि उसका अधिकांश उन्हीं की योग-पद्धति पर आधारित है।" उसी किताब के तीसरे संस्करण में उन्होंने लिखा था, "इस किताब का मसौदा १९१५ में मेरे पॉण्डिचेरी निवास-काल में तैयार हुआ था जब मेरी रोजाना श्रीअरविन्द घोष के साथ योग पर चर्चा हुआ करती थी। उन्हीं को समर्पित है मेरी यह पुस्तक। उस समय उनकी उम्र करीब ३० वर्ष की रही होगी और उन्होंने चिन्तक और गुह्यवेत्ता के रूप में सारे भारत में प्रसिद्धि पा ली थी।"

सचमुच अनुसूया को उनकी कॉपी से यह भी मालूम पड़ा कि होलेन्बर्ग का श्रीअरविन्द के साथ काफी अच्छा सम्पर्क था। कभी-कभी वे सारा-सारा दिन उन्हीं के साथ बिताया करते, कभी उनका चित्र आंकते, कभी उनके साथ ध्यान करते और कभी योग-चर्चा। आध्यात्मिक ज्ञान के सच्चे जिज्ञासु के लिए तो यह काल सच्चा 'सत्संग-काल' रहा होगा।

आइये, उनकी पुस्तक *Yoga and its importance for Europe* के कुछ हिस्सों को भी देखते चलें। पुस्तक के आमुख में होलेन्बर्ग ने लिखा, "मैं कोई विद्वान नहीं हूं, मैं हूं एक नौसिखिया जो योग तथा उसकी गहराई में डूबने को लालायित है।"

आगे वे लिखते हैं, "हाल ही में, मैं भारत में एक दिव्य पुरुष के साथ था जिनसे मैंने योग के गुह्य रहस्य और गुर सीखे। मैंने सीखा कि योग कोई नीरस-शुष्क आध्यात्मिक परम्पराओं की कड़ी नहीं है। उनका योग ऐसी आध्यात्मिकता नहीं है जो इस संसार से परे के किसी दिव्य लोक को पाने के प्रयास में जुटी हो। वह वहां का नहीं, यहां, इस धरती का योग है। भविष्य में प्राप्त स्वर्गों का नहीं, इस धरा पर उपलब्ध स्वर्ग का योग है जिसमें प्रकृति भी पूरी तरह से भाग लेगी।"

जोहान्स होलेन्बर्ग द्वारा बनाया श्रीअरविन्द का रेखांकन

फिर वे समझाते हैं, "प्रकृति एक शक्ति से सञ्चारित होती है और इस शक्ति का एक परम-चरम उद्देश्य है। अगर तुम किसी पौधे को पनपते हुए देखो तो पाओगे कि वह अधिकाधिक 'स्वयं' बन रहा है, वह आत्म-उपलब्धि की प्रक्रिया से गुजर रहा है। सारी प्रकृति में हम उसकी इस क्रमविकासात्मक प्रक्रिया को सारे समय देख सकते हैं। और समस्त प्रकृति में व्यक्तिगत पौधे के साथ-साथ हमेशा एक सामूहिक सामञ्जस्य का झरना भी बहता रहता है जो अपनी बौछार में सबको घेरे रखता है। जैसे वानस्पतिक संसार में है वैसे ही यदि प्रत्येक मानव सचमुच 'स्वयं' बनता चले, तो वह औरों के साथ सामञ्जस्य और एकता के धागे से जुड़ता हुआ वैश्वभावापन्नता को प्राप्त कर सकता है। योग को समझने और उसका अभ्यास करने से व्यक्ति की सच्ची समझ पनपती है और वह 'आत्म-सिद्धि', 'एकता' और 'वैश्वभावापन्नता' की प्रक्रिया को तेज कर सकता है। उच्चतर से उच्चतर इकाइयों को गढ़ने की प्रक्रिया ही योग है। प्रत्येक मनुष्य एक इकाई है—संघर्षों से लैस इकाई—इन्हीं संघर्षों को तोड़ कर, मनुष्यों को एक 'सामुदायिक इकाई' बनना है, तभी वह वैश्वभावापन्नता को प्राप्त कर सकता है।"

जोहान्स अपनी किताब में यह भी लिखते हैं, "मानव-विकास के कई स्तर हैं। यूरोप भौतिक विकास के उच्च स्तर पर पहुंच चुका है, लेकिन वह अपने-आप में अन्त नहीं है, न ही यह भौतिक के बाद का बौद्धिक विकास का स्तर है, इस सबके परे कुछ है। अब शायद हम उसके लिए तैयार हैं और हमें वह राह दिखलाने मनीषी और पुरोधा इस धरती पर आयेंगे। उनमें से एक हैं श्रीअरविन्द जो धरा पर विराज रहे हैं...।"

हम जानते हैं कि जोहान्स होलेन्बर्ग जितने कलम के धनी थे उतने ही 'पेंट ब्रश' के भी। उनकी तूलिका से बने श्रीअरविन्द के दो सुन्दर चित्र भी इस लेख में दिये जा रहे हैं।

और अन्त में देखिये स्वयं जोहान्स होलेन्बर्ग की दृष्टि से वह दृश्य जब वे श्रीअरविन्द से सबसे पहली बार मिले :

"वे मुझे एक बड़े से दालानरूपी कमरे में मिले जिसमें एक तरफ से हवा की अच्छी आवाजाही थी। फ़र्नीचर वहां नाममात्र को था, और था बहुत

सीधा-सादा। तीन कुर्सियों से घिरी एक मेज थी। सफेदी की हुई खाली दीवारों पर बस एकाध जापानी चटाइयां टंगी हुई थीं, दरवाजे पर आम के सूखे पत्तों की बन्दनवार झूल रही थी... एक युवक मुझे बरामदे तक ले आया और उसने मुझे वहीं प्रतीक्षा करने को कहा, मैं कुछ देर वहीं चुपचाप खड़ा रहा। अचानक मुझे उस कमरे में किसी और की उपस्थिति का भी भान हुआ, मैं मुड़ा और लो... मैंने उन्हें ठीक अपने सामने खड़े पाया! वे चुपचाप दूसरी तरफ से कमरे में आ गये थे। मैंने एक अद्वितीय, असाधारण रूप से सुन्दर आनन के दर्शन किये। उनका वह उज्ज्वल ललाट, कन्धों तक लहराते वे सुनहरे बाल, वे धीर-गम्भीर नयन जिनमें से प्रकाश छिटक रहा था, और वे बोलते होंठ। उनकी महीन दाढ़ी उनके कण्ठ के नीचे तक आ रही थी। सफेद धोती में शोभायमान वे दिव्य पुरुष प्रतीत हो रहे थे, धोती का एक सिरा उनके बायें कन्धे पर लटक रहा था। उनकी खुली हुई छाती, वे चरण-कमल जिनका स्पर्श पा धरती धन्य हो रही थी... सब कुछ अलौकिक था! शाम घिर रही थी, उस हलके प्रकाश में उनका शरीर एक अलग ही आभा से प्रदीप्त हो रहा था, मानों वह प्रकाश उन्हीं से फूट रहा हो! जब उनका सुनहरा हाथ मेरे लाल-भूरे-सफेद यूरोपियन हाथ की ओर बढ़ा तो मैं अपने-आप में सिकुड़-सा गया। कहां अनिर्वचनीय सौन्दर्य का आगार वह शरीर और कहां मेरा भक् सफेद—मानों साबुन से अच्छी तरह रगड़ा, धुला हुआ—शरीर!!

हम दोनों वहीं बैठे, हमारी बातचीत फ्रेंच और अंग्रेज़ी दोनों में हो रही थी—दोनों ही भाषाएं उनके लिए समान रूप से सरल थीं। मैं तो भौचक्का रह गया, एक क्षण वे *होमर* को उद्धृत कर रहे थे तो दूसरे ही वाक्य में कभी वेदों का उद्धरण देते तो कभी *शेक्सपीयर* का! सचमुच ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों एक ही साथ वे सभी जगतों और सभी संस्कृतियों में उपस्थित हैं... यह तो उनके व्यक्तित्व का एक पहलू था। दूसरे पहलू में वे अनन्त में निवास करते हुए प्रतीत हो रहे थे। उनके शब्द मेरे अन्दर इस तरह गहरे उतर रहे थे कि शायद मैं उन्हें अपलक भौचक्का-सा ताक रहा होऊंगा, क्योंकि एकाध बार मैंने उनके चेहरे पर मुस्कुराहट की लहर भी उठते हुए देखी थी।

उनके सम्मोहन का बाण मेरे दिलोदिमाग के आर-पार चला गया था।"

—वन्दना

SRI AUROBINDO SOCIETY

Notice for the Annual General Meeting

The Annual General Meeting of the members of Sri Aurobindo Society will be held on Saturday, the 24th September 2016, at 4.00 p.m. at its registered office, Sri Aurobindo Bhavan, 8, Shakespeare Sarani, Kolkata – 700 071, to transact the following business:

1. To confirm the minutes of the last Annual General Meeting held on 19th September 2015.
2. To consider and approve the audited Balance Sheet and Income & Expenditure Account of the Society for the year ended 31.03.2016.
3. To consider and adopt the Executive Committee's Annual Report of Activities for the year 2015 – 2016.
4. To appoint an auditor for the Society for the year 2016-2017.
5. To consider any other matter with the permission of the chair.

Sd/-

27th April 2016 (Pradeep Narang)

Puducherry Chairman

Note: The members are entitled to appoint proxy. Proxies must be deposited at the Registered Office of the Society, No.8, Shakespeare Sarani, Kolkata – 700 071, during office hours, in advance but not less than 48 hours before the time of the meeting. The proxy should be a member of the Society. Proxy form is printed below.

PROXY

SRI AUROBINDO SOCIETY,
Regd. Office: 8, Shakespeare Sarani, Kolkata – 700 071.

I, ……. being a member of Sri Aurobindo Society, having membership No. …….. valid upto ……... do hereby appoint …… having Society's membership No. …… valid upto …… as my proxy in my absence to attend and vote for me and on my behalf at the Annual General Meeting of the Society, to be held on Saturday, the 24th September 2016, at 4.00 p.m. and at any adjournment thereof.

In witness whereof, I have set my hand this
…….... day of .....……. 2016.

Revenue Stamp

(Signature of the member across the stamp)

Note: The proxy must be deposited at the Registered Office of the Society, No.8, Shakespeare Sarani, Kolkatta – 700 071, not less than 48 hours before the time of the meeting.